थिऑसोफी के मूल सिद्धान्त



सी. जिनराजदास



भाग १

—अनुवादक
रामचन्द्र शुक्ल



थिऑसोफीके मूल सिद्धान्त

FIRST PRINCIPLES OF THEOSOPHY





थिऑसोफीके मूल सिद्धान्त

भाग : १

लेखक

सी. जिनराजदास

भूतपूर्व अध्यक्ष

थिओसॉफिकल सोसायटी

अनुवादक

रामचन्द्र शुक्ल



आनन्द प्रकाशन लिमिटेड, बनारस—१.

प्रकाशक :

आनन्द प्रकाशन लिमिटेड,
थिओसॉफिकल सोसायटी,
कमच्छा, बनारस—१.

प्रथम हिंदी संस्करण

जनवरी १९५४

मूल्य १-१२-०

मुद्रक :
रामेश्वर पाठक,
तारा यन्त्रालय,
कमच्छा, बनारस—१.

अनुवादकका निवेदन

मेरी यह अभिलाषा वहुत दिनोंसे थी कि हिंदीमें 'फर्स्ट प्रिन्सिपल्स ऑफ थिऑसोफी'का रूपांतर प्रकाशित हो। सौभाग्यसे 'आनंद'की प्रधान सम्पादिका श्रीमती श्री देवीजीने इस अनुवादको धारावाहिक रूपसे 'आनंद'में प्रकाशित करनेकी इच्छा प्रकट की। उन्हींके उत्साहित करने पर मैंने यह अनुवाद जुलाई '५२ में आरंभ किया और 'आनंद' में अगस्त ५२ से यह प्रकाशित होने लगा। जब आनंद प्रकाशन लिमिटेडने अपनी ग्रंथमालाका प्रकाशन आरंभ किया और मैं भी कार्यभारसे अवकाश पा कर काशी आगया, तो इसे पुस्तकाकार प्रकाशित करनेका आयोजन हुआ। पुस्तकको सर्वांग संपूर्ण बनानेके लिए उसमें चित्रोंको यथावत् प्रकाशित करना उचित समझा गया। जो चित्र हिन्दी संस्करणमें यथावत् प्रकाशित हो सकते थे, उन्हें थिओसॉफिकल पब्लिशिंग हाउस, अड्यारके व्यवस्थापक श्री के. एस्. कृष्णमूर्तिके सौजन्यसे प्राप्त किया गया। शेष चित्रोंको हिन्दी नामांकनके साथ बेसण्ट थिओसॉफिकल स्कूल काशी, के कलाके अध्यापक श्री विजय श्रीवास्तव तथा श्री चंद्रशेखर शास्त्री एवं श्री मोहन कुलकर्णीने तय्यार किया है। हम इन चारों सज्जनोंके आभारी हैं। मूल पुस्तकका हिंदी अनुवाद प्रकाशित करनेकी अनुमति तथा सभी सुविधाएँ प्रदान करनेके लिए

हम थिओसॉफिकल पब्लिशिंग हाउस, अड्यारके अभारी हैं। हमारे सहयोगी श्री बी० केशवचन्द्रजीका इस संस्करणको प्रस्तुत करनेमें प्राय: उतनाही हाथ है, जितना मेरा। मैं उनकी सहायताके लिए उनका अत्यंत आभारी हूँ। किसी भारतीय भाषामें, और जापानीको छोड़ कर एशिया महाद्वीपकी किसी भाषामें, इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथका यह पहिला अनुवाद है। हिन्दीमें इसको प्रकाशित करते हुए हम बड़े गौरवका अनुभव करते हैं।

अंतमें हम पाठकोंसे छापेकी दो भूलोंके लिए क्षमा माँगलेना चाहते हैं; एक तो, दूसरे अध्यायमें पृष्ठोंके शीर्षकको भूलसे 'सभ्यताओंका उत्थान और पतन'के बदले पहले अध्यायका शीर्षक 'जीवन और रूपका विकास' ही छाप दिया गया है। और दूसरे, पृष्ठ ११ पर चित्र नं ४ के नीचेकी दो पंक्तियोंका क्रम उलटा हो गया है; अंतिम छपी पंक्ति "होता है...."से आरंभ हो कर पहिले छपनी चाहिए थी और '(Unicellular) प्रोटोज़ोआसे....आदि' बादको। पाठक पढ़ते समय इस भूलको सुधार लें।

हम आशा करते हैं कि जैसा सम्मान मूल अंग्रेजी ग्रंथका इस विषयके अंग्रेज़ी पाठकोंमें हुआ है वैसाही आदर हिन्दीके पाठकोंमें इस हिंदी संस्करणका होगा।

शांति कुंज, काशी।
मकर संक्रांति १९५४

रामचन्द्र शुक्ल

ग्रंथकार का प्राक्कथन

शिकागोमें १९०९ ई० में दी हुई व्याख्यान-मालाका मूर्त स्वरूप यह ग्रन्थ है। इसमें बहुत बड़े जन-समूहके समक्ष मानचित्रोंकी सहायतासे थिऑसोफीके सिद्धान्त प्रस्तुत करनेका प्रयत्न किया गया था। चित्र बनाकर उनके 'स्लाइड' तैयार किये गये और इनका प्रदर्शन एक दीप द्वारा पर्देपर किया गया। व्याख्यान सुनते समय मान-चित्र आँखोंके सामने रहनेसे श्रोताओंके लिए विषय अधिक स्पष्ट होता है, ऐसा अनुभव हुआ।

व्याख्यान-माला पूर्ण होते ही ये व्याख्यान प्रकाशनके लिए लिख डालनेका मेरा विचार था। मानचित्रोंसे 'प्लेट्स' तैयार किये गये और प्रथम तीन अध्याय 'द थिओसॉफिकल मेसेंजर' में १९१० में छप गये। यह अमेरिकाके थिओसॉफिकल सोसायटीका मुखपत्र था। शेष १२ अध्याय पूरे करनेके लिए ११ वर्षका लग जाना इस बातका द्योतक है कि थिऑसोफीय कार्यकर्ताका जीवन व्याख्यान, पत्र-व्यवहार, साहित्यिक कार्य तथा दौरेमें कितना व्यस्त रहता है। फिर भी मुझे पुस्तक-प्रकाशनमें विलंब होनेका दुःख नहीं है, क्योंकि इस कालावधिमें मेरे थिऑसोफी संबंधी ज्ञानमें पर्याप्त वृद्धि होनेके कारण मुझे अपने विषयको अधिक अच्छे प्रकारसे प्रस्तुत करनेमें सहायता मिली।

इस पुस्तककी योजनामें बहुतसे थिऑसोफीके अभ्यासक-भाइयोंने मुझसे हार्दिक सहकार्य किया है। उनमें राल्फ ई. पेकार्ड का मैं सबसे अधिक कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने १९०९ में 'स्लाइड' बनानेके लिए प्रथम मानचित्र तैयार किये। इस ग्रन्थके आधे मानचित्र उन्हींके बनाये हैं। दिनभर रेल्वेके कार्यालयमें नक्शे बनानेका कार्य करनेके बाद लगातार तीन मास तक प्रत्येक रात्रिमें मेरे दिग्दर्शनके अनुसार मानचित्र बनानेका कार्य उन्होंने किया। मानचित्र ६७ और ७८ के लिए मैं मिस्टर क्लॉड ब्रेग्डनका आभारी हू। चित्र ८१ और १२४ के 'प्लेटोके घनों' (Platonic Solids) के लिए मैं मिस्टर जी. ई. हेमसूका उपकृत हूँ जिन्होंने इनके सुंदर घन-प्रतिरूप बनाये हुए थे और जिनके छायाचित्र उसी नगरके मिस्टर रेग्नर लिंडबर्गने बहुत अच्छे प्रकारसे खींचे। सिडनी (ऑस्ट्रेलिया) के मिस्टर ई. वॉर्नरने मानचित्र ८७, ८८ एवं १२३ बनाये।

कुछ चित्रोंके लिए मैं विभिन्न प्रकाशकोंका आभारी हूँ: चित्र ९ के लिए टी. डब्ल्यु गॅलोवेकी 'फर्स्ट कोर्स इन जुऑलोजी'; चित्र १४, १५ के लिए 'नॉलेज एण्ड सायन्टिफिक न्यूज़'; चित्र २१-२४ के लिए स्कॉट एलियट के 'अटलांटिस' (इसके मानचित्र योगविद्या द्वारा गूढ़-लेख-प्रमाणोंके आधारपर सी. डब्ल्यु. लेडबीटर साहबने बनाये थे।); चित्र ४८ के लिए हचिन्सन के 'स्प्लेण्डर ऑफ द हेवन्स'; चित्र ८४ के लिए

रवि वर्मा के भारतीय पुराणोंके चित्रोंके प्रकाशक ; चित्र १२९ के लिए मिलनके एल्. वॉम्बिकीके 'मिनरालॉजिया जेनरेल'। और भी स्वीकृतियाँ अन्यत्र दी हुई हैं। अमेरिकाकी थिओ-सॉफिकल सोसायटीके १९०७-११ ई. तकके जनरल सेक्रेटरी डॉ. वेलर वान हुकके द्वारा प्राप्त ६९ मानचित्रोंके लिए मैं अमेरिकन थिओसॉफिकल सोसायटी का आभारी हूँ। इनके मूलचित्र 'थिओसॉफिकल मेसेंजर' में छापनेके लिए बनाये गये थे।

मेरे दिग्दर्शनके अनुसार बनाये हुए किसी भी मानचित्रके अधिकार सुरक्षित (कॉपीराइट) नहीं हैं और इसी रूपमें या आवश्यक परिवर्तनोंके साथ कोई भी इनका पुनर्मुद्रण कर सकता है।

जून १९२१ सी. जे.

पाँचवें संस्करणका प्राक्कथन

अपने विचारको अधिक स्पष्ट एवं यथार्थरूपसे प्रस्तुत करनेके लिए मैंने इस पुस्तकके प्रत्येक अध्यायका संशोधन किया है। १२वाँ अध्याय नवीन है; पुस्तकके शेष भागमें छोटे-मोटे सुधारोंको छोड़ और कोई परिवर्तन नहीं हुए हैं।

'प्रकृतिका सौंदर्य-संदेश' नामक १२वें अध्यायसे, मेरे विचारमें, इस पुस्तकमें दिया हुआ विकासक्रमोंका पर्यालोचन पूर्ण होगा। जिसके संकल्प मात्रसे इस विश्वका ताना-बाना बनता है, ऐसे महान् गणितज्ञ (Pure Mathematician) अर्थात् विश्वकर्माके अस्तित्वको विचारणीय तथ्य माननेके लिए विज्ञान, विशेषकर इङ्गलैंडमें, तैयार है। फिर भी यह प्रगतिशील कदम वास्तविक सत्य तक नहीं पहुँचाता।

'प्रकृति सौंदर्य एवं नियमबद्धताका आविष्कार करती है' इस तथ्यका समावेश जबतक विज्ञानमें नहीं होता, तबतक प्राकृतिक क्रियाओंके संबंधमें पूर्ण सत्यका अनुभव नहीं किया जा सकता।

मैं आशा करता हूँ कि इस नवीन अध्यायसे पाठकोंको विश्वकी क्रियाओंमें सौंदर्यका आभास प्राप्त करनेमें कुछ सहायता मिलेगी।

कोइम्ब्रा, पोर्तगाल —सी. जे.

फरवरी २४, १९३८.

विषय सूची



परिचय

जीवन और रूपके विकासका अध्ययन करके जिस ज्ञानका संकलन किया गया है वही थिऑसोफी है। इस ज्ञान का अबाध अस्तित्व है, क्योंकि अध्ययन युगोंसे जारी है और इसके अध्ययन और शोध करनेवालोंके पास वे सब साधन रहे हैं जिनसे वे प्रकृतिके रहस्योंको जान सकें। ये शोधक सिद्ध महात्मा गण हैं, जिन्होंने विकासके पथ पर मानवकी श्रेणीको पार करके सिद्ध-पद प्राप्त कर लिया है। मानव सिद्ध-पद प्राप्त करनेके लिए विकास पथपर खोज और प्रयोगोंके द्वारा ज्ञान संचय करता है। इस प्रकार इस अविरत सिद्ध-परम्परा द्वारा संगृहीत ज्ञान ही थिऑसोफी है, सनातनज्ञान अथवा ब्रह्म-विद्या है।

मानवसे सिद्धावस्थाको प्राप्त होते ही मानव विकास-क्रमका एक खिलौना मात्र न रहकर, उस क्रमके संचालकोंमेंसे एक हो जाता है। यह विकास-क्रम एक ऐसी महान् चेतना द्वारा अनुप्राणित और संचालित होता है जिसे आधुनिक थिऑसोफीके

शब्दोंमें लोगॉस (Logos) या ईश्वर कहते हैं। उस महा-चेतनाके साथ सहयोग करते हुए सिद्धपुरुष प्रकृतिको उसी चेतनाकी दृष्टिसे देख सकता है और किसी हद तक प्रकृतिका निरीक्षण प्रकृतिके निःसहाय साधन मात्रकी दृष्टिसे नहीं, वरन प्रकृतिके स्रष्टाकी दृष्टिसे कर सकता है। इस निरीक्षण का परिणाम ही आधुनिक थिऑसोफी के रूपमें जगत्के सम्मुख है।

ये सिद्धपुरुष ईश्वरके प्रतिनिधि हैं, और विकास-क्रमके सभी अंगोंका संचालन करते हैं; उनके निरीक्षणमें जीवन और रूपके विकासके सभी विभागोंका कार्य होता है। यह सिद्ध-समूह महान्-श्वेत-संघके नामसे थिऑसोफीके साहित्यमें प्रसिद्ध है। थल और जलमें, देहों और रूपोंके निर्माण और विनाशका कार्य इन्हींकी देखरेखमें होता है। राष्ट्रोंका उत्थान और पतन भी इन्हींके आदेशानुसार होता रहता है। प्रत्येक राष्ट्रको ये उस सनातन-ज्ञानका उतना ही अंश प्रदान करते हैं जितना कि उसके लिए हितकर होता है और जितना वह राष्ट्र ग्रहण कर सकता है।

कभी-कभी ज्ञानपिपासु वैज्ञानिक शोधकोंको आविष्कारोंके प्रति प्रेरित करके यह ज्ञान दिया जाता है और कभी प्रत्यक्ष रूप से दिव्य उपदेश द्वारा! इस बीसवीं सदीमें ये दोनों ही ढंग स्पष्ट हैं। वे सिद्धपुरुष जो प्राणिमात्रके

विकासकी देखरेख करते हैं, विज्ञानके अनुसंधानकारियोंको अदृश्य रूपसे सहायता देकर और उत्साहित करके परोक्ष रूपसे यह ज्ञान दे रहे हैं। प्रत्यक्ष रूपसे इन्होंने यह ज्ञान थिऑसोफीके रूपमें संसारको दिया है।

इस प्रकार एक दृष्टिसे थिऑसोफी आर्षज्ञान है, किंतु यह ज्ञान उन लोगोंने दिया है जिन्होंने स्वयं शोधकर इसे प्राप्त किया है, और ऐसे लोगोंको दिया है जो अभी स्वयं अपने अनुभवसे इसे प्राप्त नहीं कर पाते हैं। अवश्य ही जिन्हें यह ज्ञान दिया जा रहा है उनके लिए आरंभमें यह केवल एक विचारणीय संभावना मात्र है (Hypothesis)। प्रयोग और अनुभवके बाद ही यह किसी व्यक्तिका निजसंचित ज्ञान बन सकता है।

आज थिऑसोफीमें हमको सभी तथ्योंका पूरा पूरा ज्ञान नहीं है। केवल कुछ मुख्य-मुख्य तथ्य और नियम हमको बताये गये हैं जिनका ज्ञान हमको अध्ययन अनुसंधान आदि करनेको उत्साहित और प्रेरित करनेके लिए पर्याप्त है। परन्तु अभी बहुतसे रिक्त स्थानोंकी पूर्ति करनी है। यह पूर्तिका कार्य अनेक व्यक्ति हमारे मध्य कर रहे हैं। किन्तु जो ज्ञान अभी हमारे पास है, समुद्रकी बूँदके समान है; अभी सारा सागर ही पार करनेको पड़ा हुआ है। फिर भी जो थोड़ा बहुत हम जान पाये हैं वह अत्यन्त आश्चर्योत्पादक है और

उसके द्वारा हमको एक विचित्र वैभव और सौंदर्यके दर्शन चारों ओर होते हैं।

वर्तमान थिऑसोफीके साहित्यमें जीवनके विकासकी ही अधिकतर चर्चा है; परन्तु देह और रूपोंके विकासका ज्ञान भी, जिसका अध्ययन आधुनिक विज्ञानमें किया जाता है, उस सनातन ज्ञानका ही अंश है। दोनों ही में कुछ स्थान अभी रिक्त है; परन्तु जब ये दोनों ठीक दृष्टिसे देखे जाते हैं, तो स्पष्ट हो जाता है कि दोनों एक दूसरेके पूरक हैं, विरोधी नहीं।

आधुनिक विज्ञानके ग्रंथोंमें तथा थिऑसोफीके मूल सिद्धान्तोंके इस वर्तमान प्रतिपादनमें या थिऑसोफीके किसी भी परिचयात्मक ग्रन्थमें दो अंग स्पष्ट दिखाई पड़ेंगे। लेखक कुछ तथ्य तो ऐसे बतायेगा जिन्हें प्रायः सभी अथवा अधिकांश वैज्ञानिक अन्वेषकोंने स्वीकार किया है; पर वह कुछ ऐसे तथ्योंका भी अपने कथनमें अन्तर्भाव कर लेगा जिनका अनु-संधान एकाध ही व्यक्तिने, स्वयं लेखकने या किसी और ने किया है और जिसे और भी पुष्ट करने अथवा जिस पर पुनः विचार करनेकी आवश्यकता है। संभव है कि लेखक अपने वर्णनके बीच अनजानमें या अपनी अनुभवहीनताके कारण इन दोनों अंशोंको अलग अलग स्पष्ट न कर पाये। इसी प्रकार इस ग्रन्थमें प्रतिपादित मुख्य-मुख्य सिद्धांत थिऑसोफीके सिद्धान्त कहे जा सकते हैं और यह सिद्धपुरुषों द्वारा प्रकट किये हुए ज्ञानका

ही ठीक-ठीक निरूपण है; किंतु इसमें कुछ ऐसी भी बातें हो सकती हैं जिनको यह प्रतिष्ठा न दी जा सके। किन्तु सत्यका स्वरूप ठीक ठीक प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए स्वयं निर्धारित करता है, दूसरे तो केवल पथप्रदर्शनका कार्य कर सकते हैं। यही विज्ञान द्वारा प्रतिपादित तथ्य तथा विचारोंकी—जो किसी व्यक्तिके हों या भ्रमपूर्ण हों—अन्तिम कसौटी, असली मापदण्ड, हो सकती है।

यद्यपि थिऑसोफीके मौलिक तथ्य और सिद्धान्त आर्ष अथवा सिद्धपुरुषों द्वारा प्रकट किये हुए हैं, फिर भी किसी व्यक्तिके लिए ये आर्षवाक्य या मान्य-प्रमाण तब तक नहीं हैं जब तक उसकी बुद्धि स्वयं उन्हें स्वीकार न करे। प्रत्येक व्यक्ति जीवन-दर्शनमें उच्चातिउच्च निरूपणकी आकांक्षा रखता है और उसी जीवन-दर्शनकी सफलता पर उसकी अपनी सफलता निर्भर है। यह ग्रन्थ यही स्पष्ट करनेके लिए लिखा गया है कि थिऑसोफी इस प्रकारका एक जीवन-दर्शन है।

प्रथम अध्याय

जीवन और रूप का विकास

थिऑसोफीके समझनेके लिए सबसे अच्छी तय्यारी यह है कि आधुनिक विज्ञानका साधारणतया विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर लिया जाय। विज्ञान तथ्योंको एकत्र करके, उनको क्रमबद्ध करके, कुछ नियम निर्धारित करता है। थिऑसोफी भी उन्हीं तथ्योंका अध्ययन करती है और यद्यपि उनका क्रम-निर्धारण कुछ भिन्न प्रकारसे किया जाता है, स्थूल रूपसे दोनोंके निष्कर्ष एकही निकलते हैं। दोनोंमें जो कुछ अन्तर पड़ता है उसका कारण यह नहीं है, कि थिऑसोफी विज्ञान द्वारा संगृहीत तथ्योंका विरोध करती है, वरन् यह कि थिऑसोफी परिणाम पर पहुँचनेके पहिले कुछ और तथ्यों पर भी विचार करती है। इन तथ्योंको या तो विज्ञानने अभी तक जाना ही नहीं है या उनकी अवहेलना कर दी है। जब तथ्य एक हैं तो विज्ञान भी एक ही है; जो वास्तवमें 'वैज्ञानिक' है, वह थिऑसोफीके अनुकूल भी है; और जो

वस्तुतः थिऑसोफीके अनुकूल है, वह तथ्यों के अनुकूल होनेके कारण, हर प्रकार से वैज्ञानिक ही है।

सबसे बड़ी बात जो आधुनिक विज्ञानने विचारवान व्यक्तियोंके समक्ष रक्खी हैं वह यह है कि प्रकृतिकी समस्त घटनायें एक विकास-क्रमके अंतर्गत हैं। सर्व प्रथम हमें यह देखना है कि विज्ञानके अनुसार विकास-क्रमका क्या अर्थ है और तब हम यह समझनेके योग्य होंगे कि थिऑसोफीके अनुसार विकास-क्रमसे क्या तात्पर्य है।

पहिले ओरायन नीहारिका (Nebula) पर विचार किया जाय। (चित्र नं. १) यह एक अव्यवस्थित पदार्थ-समूह है जिसका तापक्रम अत्यंत उग्र है और जिसका व्यास करोड़ों मील लम्बा है। यह एक अस्पष्ट किन्तु तेजस्वी मेघ-समूह सरीखी वस्तु है जो अत्यंत शक्तिपूर्ण है; यद्यपि जहाँ तक हम जान सकते हैं, यह शक्ति कोई उपयोगी कार्य नहीं कर रही है।

किन्तु अन्य नीहारिकाएँ (नेब्युली) भी हैं जो विकास पथ पर कुछ कार्य करती जान पड़ती हैं। केन्स व्हेनॅटिस (Canes Venatici) नीहारिका (चित्र नं. २) न केवल एक केन्द्रके चारों ओर चक्कर लगा रही है वरन् उसके विभाग भी हो रहे हैं। प्रत्येक विभागका पदार्थ धीरे-धीरे केन्द्रके चारों ओर चक्कर काटते हुए एक या एकसे अधिक बीजाणुके चारों ओर सिमटकर घनीभूत हो जायगा और एक तारा बन जायगा।

इसी प्रकारका क्रम विकासके दूसरे पग पर भी अनुमानित किया जा सकता है। प्रत्येक तारेका पदार्थ भी परिवर्तित होता है। या तो अपनी किसी आन्तरिक क्रिया के कारण या किसी पार्श्ववर्ती तारेके प्रभावसे इसके पदार्थ-समूहमें अन्य उपकेन्द्र बन जायँगे और नीहारिकाका पदार्थ इन उपकेन्द्रोंके चारों ओर घनीभूत हो जायगा और इसी प्रकार धीरे-धीरे ग्रह बन जायँगे, जो केन्द्रीय बीजाणुके चारों ओर परिक्रमा करते रहेंगे। इस प्रकार हमारे अपने ग्रह-मण्डलके केन्द्र सूर्यके चारों ओर विकास-क्रमने ग्रह-मण्डल बना दिया है। इस तरह एक सुव्यवस्थित सौर-मण्डल बन गया है जिसमें सूर्यके चारों ओर अनेक ग्रह परिक्रमा करते रहते हैं। पृथ्वी भी उन्हीं ग्रहोंमेंसे एक है। (चित्र नं. ३)

इसके बाद दूसरा पग क्या होगा? इस समय तक सौर-मंडलमें हलके रासायनिक मूलतत्त्व जैसे हायड्रोजन, ऑक्सिजन, कार्बन, नायट्रोजन, फॉस्फरस, कैल्शियम, लोहा आदि प्रकट हो चुके होंगे। इनके संयोगसे कुछ नये पदार्थ बन जायँगे और तब जीवनका प्रथम प्रकटीकरण होगा। कुछ पदार्थ प्रोटोप्लाज्म (जीवित पदार्थ या जीवन-रस) बन जायगी; जीवनकी यह प्रथम मूर्तरूप आवृत्ति है। फिर आगेका पग क्या होगा?

इस जीवित पदार्थ, प्रोटोप्लाज्मके भी समूह और संगठन



चित्र १

ओरायन की विशाल नीहारिका



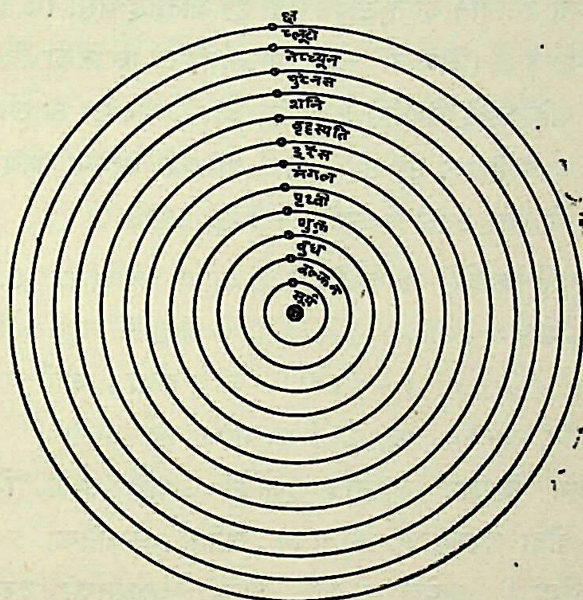
चित्र २

केन्स व्हेनाटिसी में चक्राकार नीहारिका



बन जायँगे और यह वनस्पति और जंतुजगतके प्राणियोंका रूप धारण कर लेगा। उसके पहिले वनस्पतिजगतमें क्या होता है यह देखें।

सौर-मंडल



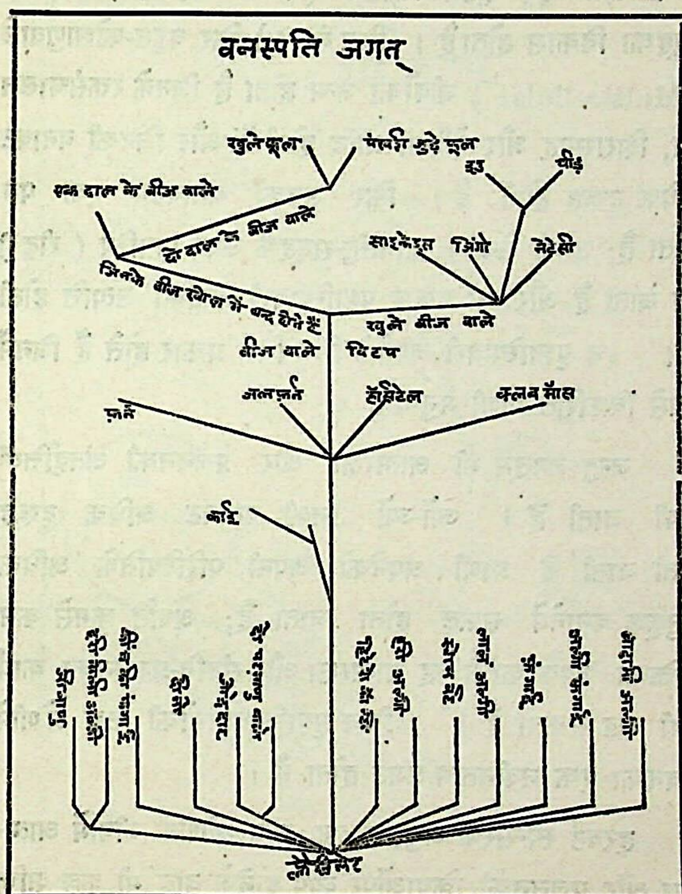
चित्र नं. ३

इस सजीव पदार्थमें आरंभसे ही दो क्रियायें स्पष्ट होंगी। एक यह कि प्रत्येक जीवित प्राणी या आकृति जबतक संभव हो, खाद्य पदार्थ प्राप्त करके अपनी प्राणरक्षा करना चाहती है। दूसरी यह कि अपने ही समान अन्य प्राणियों या

आकृतियोंको जन्म देना चाहती है। इन दो अंतर्वृत्तियोंके प्रभावसे उस आकृतिका विकास होता है अर्थात् सरलसे उसकी बनावट अधिक दुरूह हो जाती है। यह क्रम बराबर जारी रहता है जबतक कि धीरे-धीरे प्रत्येक ग्रहपर उसी प्रकारका वनस्पति जगत् उत्पन्न नहीं हो जाता है जैसा कि हमारी पृथ्वी पर है। (चित्र नं. ४). आगे आनेवाली स्थितिका विकास उसके पहिलेवाली स्थितिसे होता है, और प्रत्येकका संगठन इस प्रकार होता है कि उसका जीवन अधिकसे अधिक समय तक टिक सके और उससे उत्तमतर संततिकी उत्पत्ति हो।

पहिलेवालोंसे बादवाली स्थिति अधिक 'विकसित' होगी। एक 'कोशाणु' वाली (Unicellular) आकृतिसे बहुत-कोशाणु-वाली (Multicellular) वनस्पति उत्पन्न होगी। आगे चलकर बीज द्वारा प्रजननका अधिक कुशल साधन बन जायगा। और भी आगे चलकर पुष्पयुक्त वृक्षोंकी उत्पत्ति होगी, जिनमें प्रत्येक पौदा अपनी रक्षा करते हुए अनेक सन्ततिका प्रजनन भी करेगा। प्रत्येक श्रेणीमें जीवित आकृतिकी दुरूहता (Complexity) बढ़ती जाती है और यह दुरूहता ही उसको अधिक सफल जीवन व्यतीत करनेमें सहायक होती है। अर्थात् कमसे कम शक्तिके व्ययसे, अपने जीवनकी रक्षा करते हुए वह ऐसी सन्ततिको जन्म देती है जिसमें आत्म-प्रकाशनकी शक्ति अपने पूर्वजोंसे अधिक रहती है।

प्राय: इसी प्रकारका विकासक्रम उस जीवित पदार्थका



चित्र नं० ४

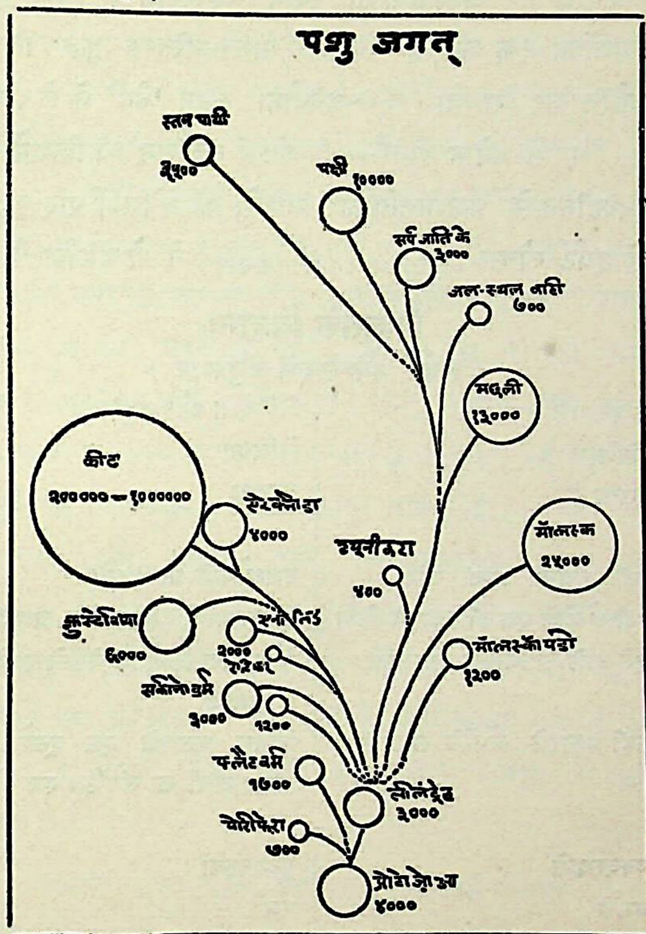
(Unicellular) प्रोटोज़ोआसे धीरे-धीरे क्रमसे एक-एक होता है जो पशुजगत्को जन्म देता है। एक कोशाणुवाले

श्रेणी बढ़ते हुए पृष्ठास्थि-रहित (विना रीढ़वाले) जीवोंके समूहका विकास होता है। (चित्र नं० ५) फिर बहुत-कोशाणुवाले (Multicellular) जीवोंका जन्म होता है जिनके रक्तसंचालन यंत्र, शिरासमूह और पेशियाँ आदि होती हैं और जिनकी बनावट अधिक दुरूह होती है। फिर उनकी बनावटमें एक पग बढ़ता है; उनके केन्द्रीय ज्ञानतंतु-समूहके ऊपर पृष्ठास्थि (रीढ़) बन जाती है और इस प्रकार पृष्ठास्थिधारी जीवोंकी उत्पत्ति होती है। इन पृष्ठास्थिधारी जीवोंके भिन्न-भिन्न प्रकार होते हैं जिनमें सबसे विकसित प्राणी मनुष्य है।

जन्तु जगत्में भी आत्मरक्षा और प्रजननकी अंतर्वृत्तियाँ पायी जाती हैं। ज्यों-ज्यों उनकी बनावट अधिक दुरूह होती जाती है प्राणी अपनेको अपनी परिस्थितिके अधिक अनुकूल बनानेमें सफल होता जाता है; अर्थात् कमसे कम शक्तिका व्यय करके वह आत्मरक्षा और संतति-प्रजननका कार्य जारी रख सकता है। लेकिन पृष्ठास्थिधारियोंकी उच्च श्रेणीमें जीवनका एक नवीनतत्व प्रगट होता है।

हरबर्ट स्पेन्सरके अनुसार इन उच्च श्रेणीके जीवोंमें आत्म-रक्षा और प्रजननकी क्रियाओंपर व्यय होनेके बाद भी कुछ शक्ति शेष रह जाती है। यह शक्ति खेल और मनोरंजनमें व्यय होती है। एक तरहसे कह सकते हैं कि मानवजातिकी उन्नति, परिश्रमके बाद बचनेवाली शक्तिको अधिकाधिक मात्रामें विश्राम,

कलाकौशल, खेलकूद, सांस्कृतिक कार्यादिके लिए, सुरक्षित करने लगती है।



चित्र नं. ९

अत्यंत प्राचीन कालकी अव्यवस्थित नीहारिकासे आजके

विचारशील, विनोदप्रिय, प्रेमीमानवके निर्माण तक, यही विकास का क्रम है। अव्यवस्थाका स्थान व्यवस्थाने पा लिया है; घटनाओंका एक क्रम है जिससे मानव-मस्तिष्क कुछ नियम निर्धारित कर सकता है—अधैर्यका स्थान 'धैर्य' ने ले लिया है। एकसे अनेक होनेमें—'एकोऽहं बहुस्याम्' की क्रियामें—क्रम-विहीनतासे क्रमशीलताकी प्राप्तिमें, जो श्रेणियाँ पार हुई हैं उन्हें हर्बर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) ने यों दर्शाया है।

विकासके सिद्धान्त

(हर्बर्ट स्पेन्सरके अनुसार)

एक-रसतासे	विभिन्नता और बहुरूपता
अनिश्चिततासे	निश्चितता
सरलता से	दुरूहता
नीची श्रेणीके प्राणी और नीची श्रेणीके एक ही प्रकारके क्रिया करने वाले प्राणियोंके समाजसे	उच्चश्रेणीके प्राणी और उच्चश्रेणीके, भिन्न-भिन्न प्रकारके, भिन्न-भिन्न क्रिया करनेवाले प्राणियों के समाज
एकही प्रकारके अंगोंके संग्रहसे	विविध प्रकारके एक दूसरे पर निर्भर अंगों का संगठित रूप

———

अव्यवस्थासे	सुव्यवस्था
अधर्मसे	धर्म
क्रमविहीनतासे	क्रमशीलता

चित्र ६.

यह सच है कि इस विकासक्रमके आरम्भ और उसकी प्रगतिको किसीने आँखोंसे देखा नहीं है और न अपने निजी निरीक्षणके आधार पर विकासकी श्रेणियोंका कोई वर्णन ही कर सकता है, न कह सकता है कि विकास एक तथ्य है। किन्तु भिन्न-भिन्न प्रकारकी नीहारिकाओंको देखकर, वर्तमान और प्राचीन कालकी उच्छिन्न जीवित आकृतियोंका अध्ययन करके इस विकास-क्रमका एक नक्शा हम बना सकते हैं। यह तो कोई भी दावा नहीं कर सकता कि सारी विचित्र सृष्टिका निर्माण कुछ हजार वर्षों पहले ही नहीं हुआ या इस सबका प्रलय कल या दो दिन बाद न होजायगा। किन्तु मानव अपने क्षणिक इन्द्रिय-जनित अनुभवसे ही संतुष्ट नहीं हो सकता; वह भूत और भविष्यका एक तर्कपुष्ट चित्रण करना चाहता है। और इसी प्रकारका एक चित्रण इस विकासक्रमका है। यह संभावना मानवजातिके इतिहास में सबसे अधिक संतोषजनक संभावना है और एक बार इसे स्वीकार कर लेने पर हर घटनामें एक क्रमशीलता आ जाती है, विकासक्रम चारों ओर स्पष्ट होने लगता है। सभी इसे तनिक उद्योग से समझ सकते हैं।

विज्ञान द्वारा प्रतिपादित इस विकास-योजना में जहाँ इतनी कौतूहलपूर्ण विचित्र सत्यता जान पड़ती है, वहाँ साथही इसका एक अत्यन्त कष्टप्रद पहलू भी है। इस अनंत-कालीन

नाटकमें व्यक्तिका स्थान अत्यन्त क्षुद्र जान पड़ता है। उसका कोई गौरव है ही नहीं। प्रकृति उदारताके साथ अपनी शक्ति का व्यय करती हुई आकृतियों पर आकृतियोंका निर्माण करती जाती है परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि इस योजनामें बड़ाही अपव्यय होता है। जितनी आकृतियाँ बनती हैं उनकी प्राण-रक्षाका समुचित प्रबन्ध नहीं दीख पड़ता। न समयकी चिंता है, न व्यक्तिकी। अपने क्षणिक जीवनमें व्यक्तिको प्रकृतिका प्यार मिलतासा जान पड़ता है परन्तु ज्योंही वह प्रकृतिके बताये पथपर एकाध कदम चला, ज्योंही उसने प्रजनन क्रिया की, परिस्थिति में कुछ हेरफेर किया, मृत्युने आकर धर दबाया और व्यक्ति मिट गया, उसका विनाश होगया। वह 'अहं' जिसकी प्रेरणासे वह जीवित रहने, प्रयत्न करने और परिस्थि-तियोंसे भिड़नेको उत्साहित होता था, समाप्त हो जाता है। प्रकृतिको, व्यक्तिकी कोई परवा नहीं; उसे तो जातिकी, उस प्रकारके बहु-संख्यक प्राणियोंके क्रम बने रहनेकी ही एक मात्र चिन्ता जान पड़ती है। प्राचीन कालके गौरवशाली देश निनेवा और बैबिलोनिया, यूनान और रोम अब कहाँ हैं? उमर खय्यामके शब्दोंमें "प्रकृति रात्रि और दिनके काले-सफेद खानोंवाली शतरंजकी मेज़ पर मनुष्योंकी गोटसे खेलरही है। इधरसे चाल उधर जाती है, मोहरे पिटते हैं और थैलीमें गुप्त होते जाते हैं।"

इस दृष्टिसे विकासक्रम अत्यंत भयंकर और ममताहीन, है; मानो परम शक्तिशाली यांत्रिक दानव मात्र. है। इस योजनामें व्यक्तिके सुख-दु:खकी बात करना असंगतसा जान पड़ता है। परंतु मानव चेतना-धारी, दु:ख-सुख अनुभव करनेवाला प्राणी है; उसे यह महासंहार अत्यंत कष्टप्रद जान पड़ता है। इसमें मानव बिलकुल शक्तिहीन और परावलम्बी जान पड़ता है। इस योजना पर उसका कोई अधिकार नहीं। स्वप्नके व्यक्तियोंके समान उसका जीवन है; पानीके बुदबुदोंके तरह क्षणिक।

क्या विकासकी योजनाका कोई ऐसा रूपभी हो सकता है जिसमें कुछ आशाकी झलक हो? थिऑसोफी इसी प्रकारकी संभावना प्रस्तुत करती है—आकृतियोंके विकासके साथ जीवनके विकासका सिद्धांतही इस प्रकारकी आशाका संचार करता है।

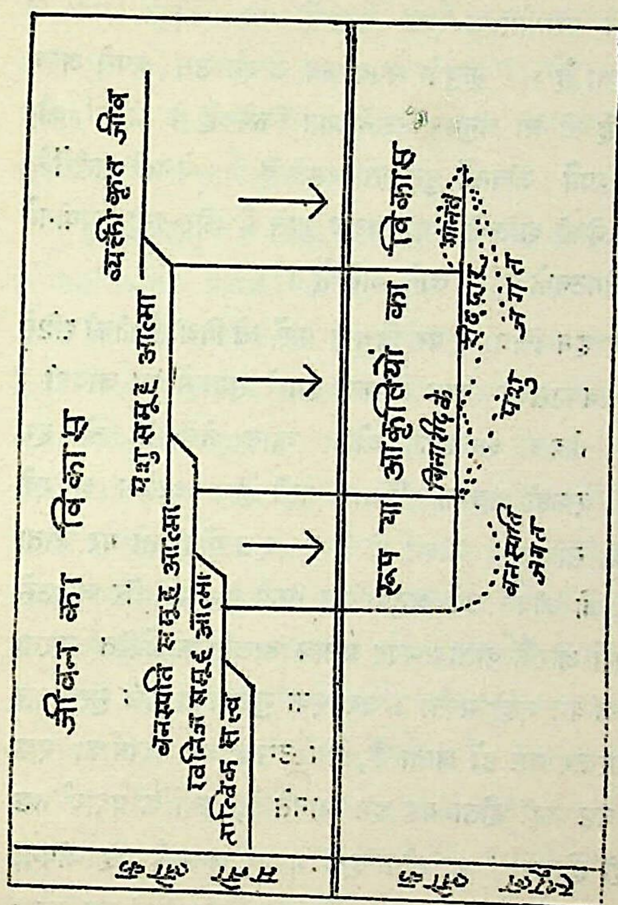
आधुनिक वैज्ञानिक, प्रकृतिका निरीक्षण करते हुए, दो वस्तुएँ पाता है, एक जड़ पदार्थ और दूसरी शक्ति—मैटर (Matter) और फोर्स (Force)। जिस तीसरी वस्तुको हम जीवन या प्राण कहते हैं, वैज्ञानिक उसे केवल पदार्थों और शक्तियोंके संयोगका परिणाम मानता है। वह समझता है कि जड़ पदार्थमें ही जीवन और चेतना दोनोंकी संभावना विद्यमान है और इनमेंसे किसीका पदार्थसे अलग, स्वतंत्र

अस्तित्व हो ही नहीं सकता। यह विचार क्रम बहुत कुछ ठीक है; परंतु थिऑसोफी इसमें कुछ हेरफेर करती है। उसका दावा है कि जिस प्रकार शक्तिके बिना पदार्थका, फोर्सके बिना मैटरका अस्तित्व नहीं, उसी प्रकार जीवनके बिना पदार्थ और पदार्थके बिना जीवन भी ंभव नहीं। दोनों एक दूसरेसे विलग नहीं हो सकते—एकका अस्तित्व दूसरे पर निर्भर है; किंतु एक दूसरेसे उत्पन्न नहीं हुआ है।

हमारी इंद्रियोंद्वारा पहचाने जानेवाले जड़ पदार्थसे अधिक सूक्ष्मतर प्रकारका जड़ पदार्थ भी विश्वमें है। यह पदार्थ सूक्ष्मातिसूक्ष्म यंत्रों द्वारा भी ग्राह्य नहीं है। इसी तरह शक्तिके भी अनेक प्रकार हैं जिनमेंसे अभी कुछका ही पता मनुष्य लगा पाया है। एक प्रकारकी शक्ति जो पराभौतिक पदार्थसे मिलकर कार्य करती है, जीवन है। यह जीवन विकासशील है; अर्थात् यह अपने प्रकट रूपमें अधिकाधिक दुरूह होता जाता है।

जीवन-क्रियाओंकी दुरूहता इंद्रियगत जड़ पदार्थके नये-नये संगठित रूपोंको बनाकर उत्पन्न की जाती है। जीवन-क्रियाके और भी प्रकार हैं। परंतु अभी हम अपना ध्यान उन्हीं जीवन क्रियाओंकी ओर दे रहे हैं जो इन्द्रियों द्वारा जानी जाती हैं। यह जीवन ही कुछ रासायनिक संगठनोंके समूहको कुछ काल तक एक रूपमें बाँधे रहता है। इस प्रकार वे जीवित

रूपमें रहते हैं। इस कालमें अपने वाहन द्वारा प्राप्त अनुभवों से



चित्र नं. ७

जीवनको और भी दुरूहता प्राप्त होती है। जीवनका वाहनसे अलग हो जाना ही उस वाहन की मृत्यु है। तब जीवनका

अस्तित्व कुछ कालके लिए भौतिक जड़ पदार्थसे अलग हो जाता है; लेकिन पराभौतिक जड पदार्थसे यह जीवन अब भी सम्बद्ध रहता है। मृत्युके समय जब जीवन उस रूपसे अलग हो जाता है तो जो अनुभव उसने प्राप्त किये हैं वे आदतों और स्वभावके रूपमें जीवनमें सुरक्षित रहते हैं। वे नये शरीरोंको निर्माण करनेकी शक्तिके रूपमें बदल जाते हैं और इसी उपयोगमें शरीरोंके संगठनके समय लाये जाते हैं।

यदि हम चित्र ७ पर विचार करें तो थिऑसोफीकी दृष्टिसे जीवनके विकासकी स्पष्ट कल्पना हमारे समझमें आ जायगी। जब हम केवल शरीरकी ओर ध्यान देते हैं तो हम विकासके एकही अङ्गका विचार करते हैं। प्रत्येक शरीरके पीछे अथवा साथ-साथ जीवन भी है। एक पौदा तो मर जाता है, परन्तु जो जीवन उसे अनुप्राणित किये हुए था और जो उसे अपने चारों ओरके वातावरणपर प्रभाव डालने को प्रेरित करता था, वह जीवन नहीं मरता। जब एक गुलाबका फूल मुरझाकर और बिखरकर नष्ट हो जाता है, तब उसके जड़ पदार्थका एक कण भी नष्ट नहीं होता यह हम जानते हैं, क्योंकि पदार्थ नष्ट कभी नहीं होता। पर ठीक इसी प्रकार अमर है वह जीवन, जो रासायनिक पदार्थोंको गुलाबके पुष्पका रूप दिये हुए था। वह जीवन कुछ कालके लिए उससे अलग अवश्य हो जाता है किन्तु दूसरे गुलाबके निर्माणके लिए वह फिर प्रकट होगा।

सूर्यके प्रकाश और वर्षाके झकोरोंका अनुभव, जीवन-रक्षाकी कश-मकश (संघर्ष), जो प्रथम गुलाबके रूपमें उसने अनुभव की है, दूसरे गुलाबके निर्माणमें क्रमशः काम आयेगी और यह दूसरा गुलाब अपने वातावरण और परिस्थितिसे अधिक लाभ उठाकर अपनी जातिको बढ़ानेमें सफल होगा।

जिस प्रकार एक सजीव रूप एक बड़े समूहकी पृथक् इकाई है, उसी प्रकार प्रत्येक सजीव रूपको अनुप्राणित करनेवाला जीवन भी एक समूह-आत्मा (ग्रूप-सोल) की एक अलग इकाई है। वनस्पति जगत्के सजीव रूपोंके साथ-साथ एक वनस्पति समूह-आत्मा लगा हुआ है। यह समूह-आत्मा उन समस्त जीवनी शक्तियोंका अक्षय भंडार है, जो नये-नये वनस्पति-रूपोंका निर्माण करके अधिक दुरूहता प्राप्तकर रही हैं। उस समूह-आत्माकी प्रत्येक इकाई जब पृथ्वीपर जीवित रूपमें फिरसे प्रकट होती है तो उसमें समूह-आत्मा द्वारा प्राप्त सभी इकाइयोंके अनुभव सन्निहित रहते हैं। प्रत्येक इकाई अपना जीवन-काल समाप्त करके जब समूह-आत्मामें लौटती है तो अपने सारे अनुभव उसे प्रदान करती है और इस प्रकार समस्त समूह-आत्मा नयी शक्तियोंसे सम्पन्न होता रहता है। यह बात पशु-जगत्के सम्बन्धमें भी लागू है। सारे पशु-जगत्के समूह-आत्मामें प्रत्येक प्रकारके पशुके परिवारका अपना विभाग सुरक्षित रहता है।

मानवके सम्बन्धमें भी यही सिद्धान्त लागू है; परन्तु मानव

उस अवस्थाको पारकर चुका है जब कि वह एक समूह-आत्माका सदस्य या अंश था। अब तो प्रत्येक मनुष्य एक अलग व्यक्ति है और यद्यपि वह मानवमात्रसे एक रहस्यमय रूपसे भाईचारेके सूत्रमें बँधा हुआ है, फिर भी प्रत्येक मानव अपने पथपर चलता और अपने निजी भविष्यका निर्माण करता है। वह जन्म-जन्ममें प्राप्त किये गये अनुभव अपने आप सुरक्षित रखता है और साधारण-तया उनको औरोंको नहीं देता। हाँ; यदि वह स्वयं चाहे तो औरोंको अपने अनुभव का साझीदार बना सकता है।

सर्वथा विनाश हो जानेके अर्थमें प्रकृतिमें मृत्यु नामकी कोई वस्तु नहीं है। कुछ कालके लिए जीवन पराभौतिक वातावरणमें खिंच जाता है, परन्तु रूप-निर्माणके नये ढंगोंका अनुभव सुरक्षित रहता है। रूप बनते और बिगड़ते हैं लेकिन यह बनना-बिगड़ना तो विकासके नाटकमें पात्रोंका आना जाना मात्र है। अनुभवका एक कण भी नष्ट नहीं होता, ठीक जिस प्रकार जड़ पदार्थका एक कण भी नष्ट नहीं होता।

और जैसा ऊपर कह चुके हैं यह जीवन विकासशील है। इसके विकासकी रीति रूपों का निर्माण है। समूह-आत्माके अंश-विशेषका उद्देश्य ऐसे रूपोंके द्वारा प्रकट होना है जो कि अपने वातावरणके पूर्णतया अनुकूल होकर, अन्य सभी रूपोंमें प्राधान्य प्राप्त करलें और जीवनकी अंतःक्रियाओंकी सूक्ष्म-से-सूक्ष्म प्रेरणाओंका भी अनुसरण कर सकें। प्रत्येक

समूह-आत्माका प्रत्येक भाग, जीवनका प्रत्येक प्रकार, प्रत्येक श्रेणी, सबका उद्देश्य यही है और इसीसे प्रकृतिमें विकट जीवन-संग्राम होता रहता है। प्रकृति रक्तरंजित है, परन्तु यह जीवन-संग्राम जैसा जान पड़ता है वैसा विनाशकारी नहीं है। रूप नष्ट अवश्य होते हैं, पर नये रूपोंके निर्माणके लिए; जीवन आता और जाता रहता है, परन्तु पदे-पदे वह उस रूपके निर्माणके समीप आता जाता है, जिसका बनाना ही उसका लक्ष्य है। जीवन नष्ट बिलकुल नहीं होता, देखनेहीमें बर्बादी दिखाई देती है, और निर्दयतापूर्ण संग्राम केवल सतत परिवर्तनशील वातावरणके योग्य सफल रूपोंके निर्माणके लिए है।

जब किसी वातावरण-विशेषके योग्य रूपोंका निर्माण हो जाता है, तब समूह-आत्माका वह अंश-विशेष उन रूपोंके द्वारा अपनी जीवनी शक्तिको पूर्णतया प्रकट करता है, और जब वह वातावरण बदलता है तभी वह समूह-आत्मा फिर दूसरे अधिक उपयुक्त रूपोंकी खोजमें आगे बढ़ता है। इस तरह वनस्पति और पशु-जगत्के समूह-आत्माके अंश सतत संग्राममें रत रहते हैं, योग्यतम् रूपकी सफलताके लिए। फिर भी इस संग्राममें जीवनकी एक भी इकाई नष्ट नहीं होती। यह विजय तो समस्त जीवनके हितके लिए है जोकि निरंतर ऐसे रूपोंकी खोजमें रहता है जिनके द्वारा उसकी छिपी शक्तियाँ प्रकट हो सकें।

जीवनके विकासक्रममें भूमिकाएँ होती हैं। जीवन पहले पराभौतिक पदार्थके रूपोंका निर्माण करता है और इस अवस्थाको हम तात्त्विक (एलिमेण्टल) जीवन कहते हैं। फिर पूर्वानुभवके सहारे यह जीवन रासायनिक संगठनोंको अनुप्राणित करता है और खनिज समूह-आत्मा बन जाता है। फिर वह जीवन रस (प्रोटोप्लाज्म) बनाता है और वनस्पतिका रूप धारण करता है और बादमें पशु-जगत्में प्रवेश करता है। इसके बादकी भूमिका मानवकी है। अब जीवन ऐसे व्यक्तियोंका निर्माण करता है, जो विचार कर सकते हैं और प्यार कर सकते हैं; जिनमें आत्मबलिदान और आदर्शवादकी शक्ति होती है। एक अंग्रेजी कविके शब्दोंमें "मानव बननेकी चेष्टामें कृमि नाना प्रकारके रूपोंकी सीढ़ीपर चढ़ता है"। और फिर भी मानव इस शृंखलाकी अंतिम कड़ी नहीं है।

अणुसे मानवके निर्माणके इस विश्वविधानमें, यदि हम इस विधान और प्रपंचको ठीक-ठीक समझना चाहते हैं, एक बात बहुत ध्यान देने योग्य है। यद्यपि प्रकृति अथवा जड़ पदार्थका विकास सरलसे दुरूहताकी ओर है, एक-रसतासे बहु-रसताकी ओर है, किन्तु जीवनका विकास इस प्रकार नहीं है। पदार्थका विकास तो उसको एक प्रकारसे नये ढंगसे सजानेमें है, परंतु जीवनका विकास उसकी आंतरिक शक्तियोंके खोलने, प्रकट करने-

से होता है। जीवित पदार्थके पहले कोशमें ही अगम्य रीतिसे कवि कालिदास और गायक तानसेन छिपे पड़े हैं। प्रकृतिको करोड़ों युग लग जायँ जिनमें वह जड़ पदार्थको इस प्रकारसे सजा सके कि अंतमें ऐसा वाहन तय्यार हो जिसके द्वारा कालिदास और तानसेन प्रकट होकर प्रकृतिकी रंगशालामें अपना नाट्य प्रदर्शित कर सकें। फिर भी इन करोड़ों युगों तक ये दोनों कलाकार विचित्र ढंगसे छिपे मौजूद थे। जीवनका विकास प्राप्तिके द्वारा नहीं, दानके द्वारा है। क्योंकि जीवनके मूलमें उससे भी बढ़कर शक्ति, चेतना छिपी हुई है। अपनी शक्ति, अपनी करुणा और अपने सौंदर्यके भरेपूरे भण्डारमें से परम प्रभुने जीवनके प्रथम अणुको अपनी समस्त शक्ति दी। जिस प्रकार पर्वत श्रेणीपर फैली हुई समस्त किरणें स्फटिक लेन्सके द्वारा एक नन्हेंसे विन्दुपर केन्द्रित की जा सकती हैं, ठीक उसी प्रकार जीवनका प्रत्येक अणु उस असीम जीवका केन्द्र है। प्रत्येक कोश (सेल) में समस्त जीवनका निवास है। उसीकी कृपा दृष्टिसे उचित समयपर कालिदास और तानसेन प्रकट होते हैं और इस प्रकटीकरणके क्रमको हम विकास कहते हैं।

यह सत्य है कि रूपोंके विकासके अध्ययनने, आधुनिक विज्ञानके द्वारा, विश्व-संबंधी हमारी कल्पनाओंको अधिक विस्तृत और शुद्ध कर दिया है, पर साथ ही जीवनके विकासके अध्ययनका फल इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है। जीवनके

विकासके अध्ययनमें नयी-नयी गुत्थियाँ निकलती आती हैं और उनपर विचार करनेपर विकास-विधानका एक नया मूल्यांकन होता है। पहली बात दुरूहताकी यह है कि वैज्ञानिकके बताये रूपोंके अन्तर्गत जीवनके कई विकासशील स्रोत एक दूसरेसे अलग और समकक्ष आगे बढ़ते रहते हैं।

विकास की श्रेणियाँ

१ मानव जाति	२ देव जगत्	३	४	५	६	७
सिद्ध पुरुष	देव					
मानव	प्रकृति देवता (भुवर्लोकीय)					
पशु	प्रकृति देवता (ईथरीय)					
वनस्पति	पशु					
खनिज	वनस्पति		रसायनिक तत्व			
तात्विक सत्त्व	खनिज	कोश जीवन (Cell-Life)	परमाणु			

चित्र ८

इनमें दो स्रोत हैं मानवजगत् और देवजगत् (चित्र८)। जैसा ऊपर कहा जा चुका है मानव-जीवनके पहिले पशु-जगत्, वनस्पति-जगत्, खनिज-जगत्, और तात्विक (एलिमेण्टल) जगत् हैं। परन्तु इसी खनिज-जगत्के जीवनका एक और

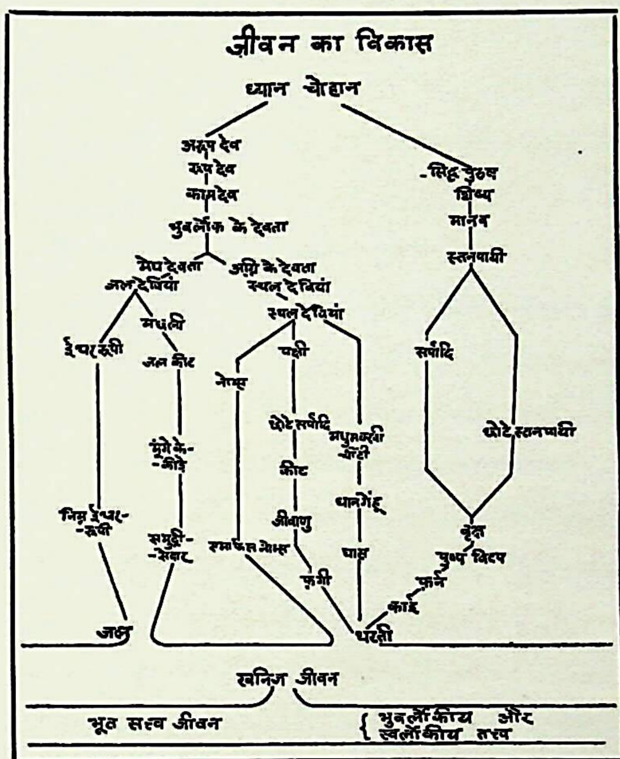
स्रोत, वनस्पति और पशु-जगत् होते हुए वन-देवी और वन-देवताओंमें होकर देव-जगत्को जाता है। एक और स्रोत जिसके बारेमें बहुत कम ज्ञान है, (Cells) कोशोंका जगत् है। इसी तरह विद्युत स्फुलिंग और रासायनिक तत्वोंका भी कदाचित् अलग जगत् है और भी दूसरे विकास-क्रम कदाचित् हमारी पृथ्वीपर चल रहे हैं, पर जिनके बारेमें हमारे पास विचार करने योग्य सामग्री नहीं है।

रूपोंके द्वारा जीवनका विकास एक प्रकारकी सीढ़ी बनाकर स्पष्ट किया जा सकता है (चित्र ९)। ठोस, तरल और वायुरूप पदार्थके बने हुए जीवित शरीरोंको जीवन अपने विकासमें काममें लाता है; पर साथ ही इन तीनोंसे भी सूक्ष्मतर पदार्थ भी है जिन्हें थिऑसोफिस्ट लोग अपने साहित्यमें ईथरका नाम देते हैं—जिसका उपयोग रूपोंके निर्माणमें होता है। यहीं नहीं, पदार्थके और भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप—जिन्हें भुवर्लोकका पदार्थ और मनोमयलोकका पदार्थ कह सकते हैं—काममें आते हैं। खनिजसे ऊपर चढ़कर छः पृथक्-पृथक् धाराओंके द्वारा जीवन सिद्ध पुरुषोंकी अवस्था प्राप्त करके अरूप-देवों और ध्यान-चौहानोंकी अवस्था तक पहुँचता है। इन छः धाराओंमेंसे केवल दो धाराएँ भौतिक पदार्थके सूक्ष्मतर ईथरीय अवस्थाका उपयोग करके फिर भुवर्लोकके पदार्थके रूप गढ़ती हैं। एक धारा जलमें रहनेवाले जीवोंके

रूपोंका निर्माण करती है और तीन धाराएँ धरती (स्थल) पर रहनेवाले जीवोंके रूपोंका उपयोग करती हैं। छःमेसे केवल एक धाराके द्वारा जीवन मानवका रूप धारण करता है ; अन्य पाँच धाराएँ देवयोनिके विकासक्रममें चली जाती हैं।

यह ध्यानमें रखनेयोग्य है कि जीवनके विकासकी अपनी अलग पुश्तैनी परिपाटी है जो रूपोंकी पुश्तैनी परिपाटीसे पृथक् है। स्तन-पायी (mammals) और पक्षी दोनोंही पृथ्वीपर पेटके बल चलनेवाले जीवोंके ही विकसित रूप हैं; यह केवल उनकी शारीरिक पुश्तैनी परिपाटीका द्योतक है। समुद्रकी घास, कुकुर-मुत्ता (फङ्गाय), साधारण घास, तथा काई इन सबकी उत्पत्ति जलके एक सेल (कोष) वाली वनस्पतियोंसे है, परंतु यह केवल उनकी शारीरिक पुश्तैनी परिपाटीकी बात है---उनका जीवन तो चार पृथक्-पृथक् धाराओंसे होकर आया है। इसी प्रकार स्तन-पायी प्राणी (mammals) और पक्षीकी एक ही शारीरिक पुश्तैनी परिपाटीके होते हुए भी, उनका भविष्य क्रम अलग-अलग निश्चित है ; ईथरीय रूप धारण करने पर पक्षी पृथ्वीपरके निम्नकोटिकी देव-योनिको पारकरके भुवर्लोककी देवयोनिमें चले जायँगे, किंतु स्तन-पायी प्राणी तो आगे चलकर मनुष्ययोनिको प्राप्त होंगे।

इन ईथरीय रूपोंके पृथ्वी और जलके भीतरके जीवन-क्रमकी चर्चा करनेके पहले यह बताना आवश्यक है कि ईथरीय



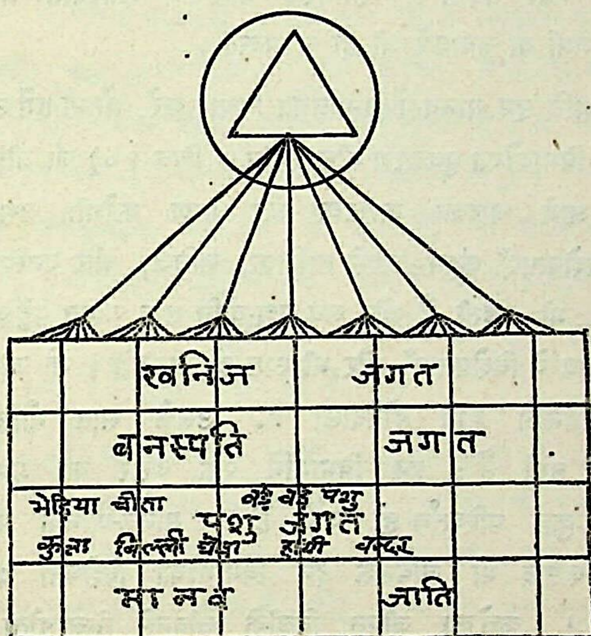
जीवन का विकास
ध्यान चोहान
अरूप देव
रूप देव
कामदेव
भुवर्लोक के देवता
मेघ देवता
जल देवियां
अग्नि के देवता
स्थल देवियां
स्थल देवियां
मछली
ईथररूपी
जल कीट
पक्षी
छोटे सर्पादि
मधुमक्खी-चींटी
मूंगे के-कीड़े
कीट
धान गेंहू
निम्न ईथर-रूपी
जीवाणु
समुद्री-सेवार
घास
फंगी
जल
धरती
काई
फर्न
पुष्प विटप
वृक्ष
छोटे स्तनपायी
सर्पादि
स्तनपायी
मानव
शिष्य
सिद्ध पुरुष
खनिज जीवन
मूल तत्व जीवन
भुवर्लोकीय और स्वर्लोकीय तत्व

चित्र ९



रूप पदार्थके बने होनेपर भी ठोस चट्टानों और जल-भरे समुद्रमें

जीवनके प्रकार



चित्र १०

होकर उसी प्रकार निकल सकते हैं, जैसे वायु लकड़ियोंके ढेरमेंसे होकर निकल भी सकती है और उनके कुंदोंके बीचकी संधियोंमें रह भी सकती है। हमारी घनीसे घनी ठोस वस्तुएँ भी

ईथरीय पदार्थके लिए झीनी हैं, जिनके द्वारा होकर ये ईथरीय रूप इसपारसे उसपार जा सकते हैं। इसलिए ईथरके बने शरीर पृथ्वीके भीतर तथा समुद्रके अंदर बिना किसी कठिनाईके रह सकते हैं। इनके ऊपर गर्मी अथवा दबावका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। साधारण भौतिक शरीरधारी प्राणी इतनी गर्मी या दबावमें जी ही न सकते।

यदि हम मानव-योनि-मात्रका विचार करें, तो भी हमें उसी प्रकार विभागोंका पृथक्करण दीख पड़ेगा। (चित्र १०) जो जीवन-धारा आगे चलकर मानवका रूप धारण करेगी, उसकी कुछ विशेषताएँ अंकुर-रूपसे तात्विक, खनिज, और वनस्पति-योनिमें भी रहती हैं और जब पशु-योनि तक जीवन पहुँचता है। तब ये विशेषताएँ और भी स्पष्ट हो जाती हैं। जो जीवन मनुष्य-योनिको प्राप्त होनेवाला है, उसके सात मौलिक विभाग होते हैं; इन विभागोंमें एक दूसरे का प्रभाव पड़कर कुछ परिवर्तन हो जाते हैं। मानव-योनिके प्राप्त करनेके पहिले भी जीवनके इन विभागोंकी विशेषता पाई जाती है। कुत्तेका जीवन बिल्लीके जीवनसे भिन्न होता है और हाथीका जीवन इन दोनोंहीसे भिन्न होता है। कुत्तेका जीवन भेड़िये और शृगाल तथा उसी परिवारके अन्य पशुओंमें होकर विकसित हुआ है और अंतिम रूप पालतू कुत्तेका है। उसी तरह दूसरे प्रकारके पशु, बिल्ली, घोड़ा, हाथी,

बन्दर, अपने पहिले जन्मोंमें अन्य जंगली रूपोंमें रह चुके हैं; इनके पूर्वजोंके आदिम रूप अब सर्वथा नष्ट हो चुके हैं। इस विषयका अधिक विस्तृतु वर्णन इस ग्रंथके सातवें अध्याय 'पशुओंका विकास'में होगा।

वैज्ञानिक विभागके लोगोंमें कुछ केवल सिद्धान्त-प्रेमी होते हैं और कुछ प्रयोगशील। कुछ श्रद्धालु वैज्ञानिक भी होते हैं, यद्यपि इनकी संख्या बहुत कम होती है; ये वैज्ञानिक अन्वेषण करते हुए भी सारे विश्वको ब्रह्ममय अनुभव करते हैं। कुछ प्रदर्शन-शील वैज्ञानिक भी होते हैं, जो सदैव संसारके समक्ष चमत्कारिक वस्तुएँ रखकर लोगोंकी आँखोंसे ओझल नहीं होना चाहते। ये अहंकारके कारण ऐसा नहीं करते यह तो इनका ईश्वर-दत्त स्वभाव ही है।

शासक-स्वभाववाले प्राणी भी दो प्रकारके होते हैं। एक, नाटकीय अथवा प्रदर्शनशील! इस प्रकारके राजनीतिक नेता अनेक देखे जाते हैं। दूसरे, आकर्षक, जिनके अनुयायी उनसे बहुत आकृष्ट होते हैं और उनके प्रति बड़ी आस्था और भक्तिका व्यवहार करते हैं। इस प्रकारके नेता स्वयं तनिक भी प्रदर्शनशील नहीं होते। उन्हें नाम अथवा दिखावेकी कोई चिंता नहीं रहती—केवल कार्य होना चाहिए।

दार्शनिकोंके संबंधमें अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं।

उनके भिन्न-भिन्न ढंग उनके स्वभावके अनुकूल होते हैं। स्पेन्सर और हेकेल, रस्किन और कार्लाइल, अरस्तू, (ॲरिस्टॉटल) और प्लेटो, शंकराचार्य और रामानुजाचार्य, काण्ट, हेगेल तथा स्पिनोज़ा आदि—ये सभी इस मार्गके नाना प्रकारके लोग हैं।

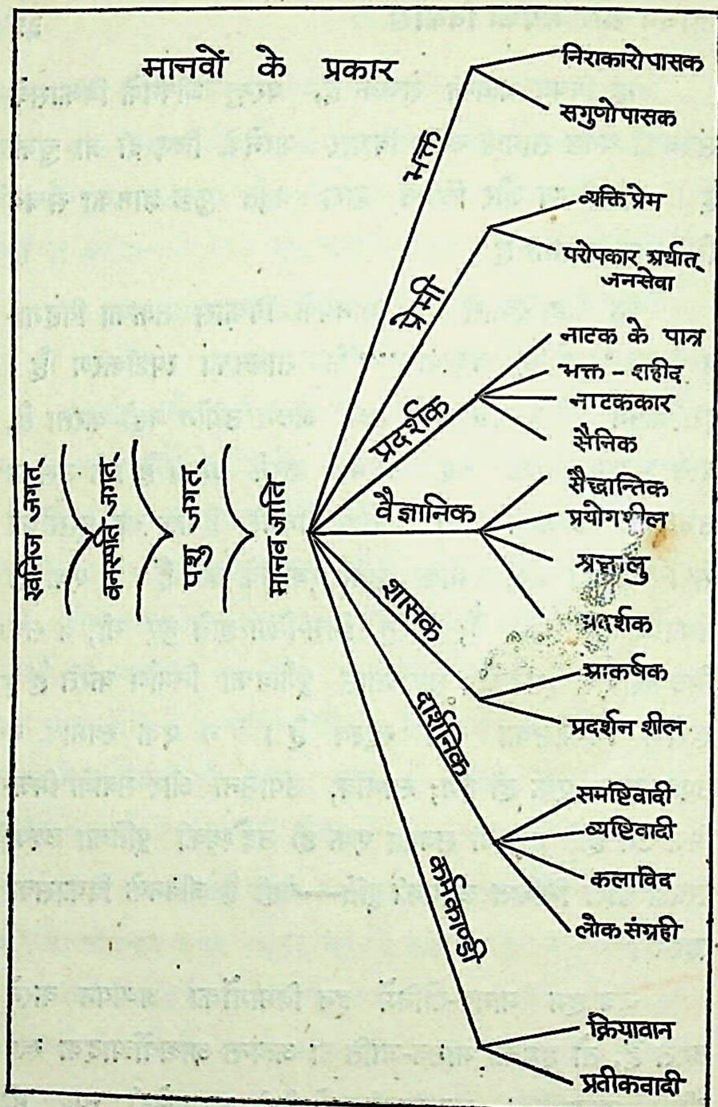
एक प्रकारका स्वभाव और है, जिस स्वभावके लोगोंके प्रति भी भ्रम तथा भूलसे कभी-कभी लोग अन्याय कर बैठते हैं। इनको कर्मकाण्डी कहा जा सकता है। ये जीवनको एक रहस्यके रूपमें देखते हैं और फिर उसका चित्रण करते हैं। ईसाई संत सेण्ट जॉन, जिसने रैव्हेलेशन (Revelation) ग्रन्थ लिखा है, इसी प्रकारका व्यक्ति था; उसे आध्यात्मिक चित्रों और प्रतीकोंके निर्माणमें ही आनन्द आता था। इस प्रकारके ही स्वभावके कुछ लोग धार्मिक कृत्योंमें कर्मकाण्डको प्रधान स्थान देते हैं। धार्मिक जीवन, बिना धूप-दीप-नैवेद्य-पुष्प-गन्धादिके पूर्ण ही नहीं जान पड़ता। कोरे ध्यान अथवा चिंतनसे उनको संतोष नहीं होता।

इस प्रकार परब्रह्म अपने अंशस्वरूप मानवको भिन्न-भिन्न मार्गसे ले चलकर अपने महान् कार्यमें सहयोग देने योग्य बनाता है। उसकी दृष्टिमें सभी मार्ग एकसे हैं। प्रत्येकको अपने मार्ग द्वारा ही चलकर अपने लक्ष्य तक पहुँचना है। साथही दूसरे मार्गोंको ईश्वर-दत्त मार्ग समझकर उनपर चलनेवाले लोगों के साथ पूर्ण सहानुभूति और समताका व्यवहार करना चाहिए।

यह विषय अत्यन्त रोचक है, परन्तु जीवनके विकासके संबंधकी यथेष्ट सामग्री ऊपर विचार करनेके लिए दी जा चुकी है। निरीक्षण और चिंतन द्वारा बहुत कुछ ज्ञानका संचय किया जा सकता है।

यह नीहारिकासे लेकर मानवके विकास तकका विहगावलोकन 'एकोऽहं बहुस्याम्....'के साधनका स्पष्टीकरण है। इस क्रममें प्रत्येक अंश अपने लिए अलग उद्योग नहीं करता है, वरन् प्रत्येक क्रमशः यह अनुभव करने लगता है कि उसका उच्चतम् प्रकटीकरण इसी बातपर निर्भर है कि वह दूसरोंकी सेवा-सहायता करे, क्योंकि सभी एकहीके रूप हैं। एक ही प्रकारके सब नहीं हैं; परंतु भिन्न-भिन्न होते हुए भी, वे सब मिलकर एक दूसरेकी सहायतासे पूर्णत्वका निर्माण करते हैं। रूपोंके विकासका यही रहस्य है। न एक स्वभाव, न उपासनाका एक ही ढंग; स्वभाव, उपासना और सेवाके भिन्न-भिन्न ढंग होते हुए भी सबका एक ही उद्देश्यकी पूर्तिका लक्ष्य; परब्रह्म द्वारा निश्चित लक्ष्यकी पूर्ति—यही है जीवनके विकासका रहस्य।

जब हम मानव-योनिमें इन विभागोंका अध्ययन करने लगते हैं, तो हमको मानव-जातिका अत्यन्त आश्चर्योत्पादक रूप दृष्टिमें आता है। कल्पनाकी थोड़ीसी उड़ानसेही स्पष्ट हो जायगा कि कुत्तेकी योनिमें होकर मानव-योनि प्राप्त करनेवाले


मानवों के प्रकार
खनिज जगत्
वनस्पति जगत्
पशु जगत्
मानव जाति
भक्त
निराकारोपासक
सगुणोपासक
प्रेमी
व्यक्ति प्रेम
परोपकार अर्थात् जनसेवा
प्रदर्शक
नाटक के पात्र
भक्त - शहीद
नाटककार
सैनिक
वैज्ञानिक
सैद्धान्तिक
प्रयोगशील
श्रद्धालु
प्रदर्शक
शासक
आकर्षक
प्रदर्शन शील
दार्शनिक
समष्टिवादी
व्यष्टिवादी
कलाविद
लोक संग्रही
कर्मकाण्डी
क्रियावान
प्रतीकवादी

चित्र ११

प्राणी भक्ति-मार्गीय जीव होंगे। मानव-स्वभावका वर्गीकरण करते हुए चित्र ११ में जो विभाग किये गये हैं, वे सर्वथा परिपूर्ण, शुद्ध और अन्तिम नहीं कहे जा सकते। जो विभाग किये गये हैं वे एक प्रकारके इङ्गित-मात्र हैं। सात विभाग स्पष्ट जान पड़ते हैं। इनमेंसे कोई एक दूसरेसे उच्च या नीच नहीं है। विकास क्रमके नाटकके लिए प्रत्येक विभाग आवश्यक और अनिवार्य है और दैवी जीवन और चेतनाके विकास और प्रकटीकरणके लिए विधि-विधानानुसार इन सबकी आवश्यकता है और सभी उसमें सहायक हैं।

यदि हम अपने आस-पासके भक्ति-भाववाले लोगोंका निरीक्षण करें, तो हम देखेंगे कि कुछ तो सीधे ईश्वर-भक्तिमें मग्न रहते हैं और कुछ ऐसे हैं जो ईश्वरके सगुण रूपकी उपासना करते हैं, फिर वे इष्टदेव चाहे रामके रूपमें प्रकट हों, या कृष्णके, या ईसामसीहके। कुछ भक्ति-मार्गी प्राणी प्रदर्शनशील होते हैं और शहीद होना—बलिदान हो जाना—ही उनके जीवनका लक्ष्य जान पड़ता है। यह न समझा जाय कि ये लोग दिखावे अथवा अहंकारके कारण ऐसा करते हैं, वरन् यह तो उनका स्वभाव ही है। उन्हें संतोष ही नहीं होता जब-तक भीतरी भावोंका प्रदर्शन न होता रहे। कुछ लोगोंकी ईश्वर-भक्ति दीन-दुखियोंसे अपनेको आत्मसात् कर देनेका ही रूप धारण करती है। भगवान् उनके लिए दरिद्र

नारायण होकर प्रकट होते हैं। उनकी सेवा, उनके साथ एकीकरण ही, उनकी भक्ति है; यह भी एक प्रकारकी सगुणोपासना है।

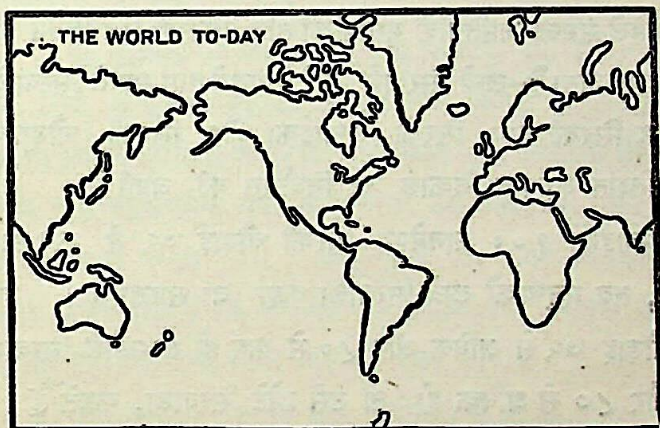
प्रेमी स्वभावके लोग भी कई प्रकारके होते हैं। कोई तो एक व्यक्तिके ही प्रेममें मस्त रहते हैं और उसीके ऊपर सब कुछ न्योछावर करनेको प्रस्तुत रहते हैं। और अन्य लोग ऐसे भी होते हैं, जिनका प्रेम भी कम नहीं होता, किंतु वे उस प्रेमको माता-पिता, संतान, मित्र, तथा मानव-मात्रके प्रति प्रसारित करते हैं। ऐसे लोग अनेक लोकोपकारी संस्थाओंका निर्माण, संचालन और उनकी सेवा करते हैं।

प्रदर्शनशील अथवा नाटकीय स्वभावके लोगोंमेंसे एक विभाग की चर्चा ऊपर भक्तोंके संबंधमें की गयी है। उन्हें जीवन तभी संतोषप्रद जान पड़ता है जब वे रंगमंचपर खेलतेसे दीखते हैं; उन्हें नाटकके प्रभावशाली पात्र बननेमें ही आनन्दकी प्राप्ति होती है; इसके बिना कोई सुख ही सच्चा नहीं जान पड़ता। कष्ट भी प्रदर्शनका रूप धारण कर लेता है। इस प्रकारके जीवोंका एक विभाग तो नाट्यशालाकी ओर आकृष्ट होता है और ये सफल नट होते हैं। इनमेंसे दार्शनिक बुद्धिवाले लोग नाटक लिखते हैं; और शासक-भाववाले बड़े प्रभावशाली राजनीतिक नेता अथवा सेनापति होते हैं।

द्वितीय अध्याय

सभ्यताओंका उत्थान और पतन

चित्र १२ में आजके संसारका मानचित्र दिया हुआ है। आज संसारके भिन्न-भिन्न देशोंमें, पूर्व, पश्चिम, उत्तर दक्षिणमें, नाना वंश और धर्मके लोग बसते हैं और उनके वंशगत गुणों और रीति-रिवाजोंका अध्ययन एक अत्यन्त रोचक



चित्र १२. आजका जगत्

विषय है। मानव-जातिके भिन्न-भिन्न अंशोंका यह अध्ययन, उनके 'शगत गुणविशेषका निरीक्षण, जिस शास्त्रका विषय है,

उसे अंग्रेज़ीमें एथ्नॉलॉजी (Ethnology) कहते हैं। थिऑसोफ़ीमें सभ्यताओंके उत्थान और पतनके संबंधमें जो कुछ बताया गया है, उसे हम अधिक सफलताके साथ समझ सकेंगे, यदि हम आधुनिक विज्ञानकी उन शोधोंको पहिले जान लें जो कि मानव-जातिके सम्बन्धमें की गयी हैं।

आजकी मानव-जातिको कई प्रकारसे बाँटा जा सकता है। दो रीतियाँ विशेषत: मान्य हैं। सिरके आकार और बालोंकी बनावट, ये दो ढंग मानव-जातिको बाँटनेके हैं; क्योंकि यह देखा गया है कि शरीरके ये दो अङ्ग वंशपरंपरासे एकही प्रकारके रहते हैं; उनमें परिवर्तन बहुत थोड़ा होता है। पहिले समस्त जातियोंके मनुष्योंको तीन प्रकारके सिरवालोंमें बाँट दिया जाता है—लम्बे सिरवाले, छोटे सिरवाले तथा मझोले-सिरवाले। यह सिरकी नाप, सिरकी लम्बाईका और सिरकी चौड़ाईका प्रतिशत अनुपात निकाल कर निर्धारित की जाती है। यदि लम्बाईको १०० माननेपर सिरकी चौड़ाई ७५ से कम होती है, तब मनुष्यको लम्बे-सिरवाला कहा जा सकता है। यदि चौड़ाई ७५ से अधिक और ८० से कम हो तो मझोले सिरवाला और ८० से अधिक हो तो उसे छोटे सिरवाला, कहते हैं।

दूसरा ढंग बालोंकी बनावटका है। बाल या तो ऊन-जैसे घुंघराले होते हैं या लहरदार, या फिर सीधे और चिकने। ऊन सरीखे घुंघराले बाल चपटे होते हैं और यदि उनको सुटाई

को काटकर सूक्ष्म-दर्शन-यन्त्रके नीचे देखा जाय तो एक लंबा अण्डाकार रूप दिखाई देगा। चिकने और सीधे बालकी मुटाई यन्त्रसे देखनेपर गोलाकार दिखती है, और लहरदार बालोंकी मुटाई इन दोनोंके बीचकी होती है; न सर्वथा गोलाकार, न लम्बा-अंडाकार। बनावटके ये भेद ही बालोंको घुंघराले अथवा लहरदार या फिर सीधे और चिकने बना देते हैं।

यह दो प्रकारका मानवजाति-विभाजन संक्षिप्त रूपसे चित्र १३ में दिखाया गया है। एथ्नॉलॉजी (वंश विज्ञान) के एक विद्वान, ब्रोका (Broca) ने मानव-जातिको इस प्रकार, तीन जातियोंमें बाँटा है।

किसी जातिके सब लोगसर्वथा एक प्रकारके नहीं होते—सभीमें लम्बे, छोटे तथा मझोले सिरवाले लोग मिलते हैं; परन्तु फिर भी प्रत्येक जातिके अधिकांश लोग किसी एक प्रकारके होते हैं और इसी बहुसंख्यक प्रकारके अनुसार उस जातिका विभाग निश्चित किया जाता है। कभी-कभी तो इतने मिले-जुले प्रकारके लोग होते हैं कि वंशविज्ञानके विद्वान यह निश्चय ही नहीं कर पाते कि इन्हें किस विभागमें रखा जाय।

दो और विद्वानों (फ्लावर और लिडेकर) ने भी जो विभाजन किया है, वह इससे अधिक भिन्न नहीं है। इस विभाजनमें चेहरेकी बनावट, बालोंका और त्वचाका रंग, तथा अन्य शारीरिक विशेषताओंको भी ध्यानमें रखा गया है।

	वंशवैज्ञानिक विभाजन
ब्रोका के अनुसार	१. सीधे बालवाले (क) लम्बे सिर के : एस्किमो (ख) छोटे सिर के : आदि अमेरिकन (रेड इण्डियन) पेरू देश के लोग, मंगोल, मलाया आदि २. घुंघराले बालवाले (क) लंबे सिर के : अंग्रेज़, स्कैण्डिनेवियाके लोग, अरब तथा यहूदी, डच, रूसी, और भारतके आर्य (ख) छोटे सिर के : फिन, केल्ट, स्लाव, और ईरानी ३. ऊनकेसे काले बालवाले : काफ़र तथा हब्शी
फ्लावर और लिडेकर के अनुसार	१. इथिओपिअन : हब्शी तथा आदिम ऑस्ट्रेलिया निवासी २. मंगोलिअन : मंगोल, मलाया तथा पॉलिनेशिया के लोग ३. कॉकेशियन अथवा आर्य (क) हल्के रंग के बालवाले : स्लाव, ट्यूटन, तथा केल्ट (ख) काले बालवाले : दक्षिणी यूरोपके लोग, अरब, हिन्दू, और अफ़गान

चित्र १३

लेमूरियन जाति के मनुष्य



चित्र १४



चित्र १५

अटलांटियन जाति के मनुष्य



चित्र १६



चित्र १७



चित्र १८

आर्य जाति के मनुष्य



चित्र १९



चित्र २०



यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि दोनों ही प्रकारके विभाजनमें तीन मुख्य जातियोंमें मानव-जातिको बाँटा गया है—(१) **हब्शी जाति :** काले, मोटे अधर, लम्बे सिर और काले घुंघराले बालवाले (२) **मंगोल जाति :** ऊँची गालकी हड्डी, पीले या लाल रंगकी त्वचा, काले सीधे तथा चिकने बाल, और पुरुषोंके चेहरेपर बाल कम; तथा (३) **आर्य जाति :** गोरे या गेहुँए रंगके, बाल काले या चमकीले सन के से, तथा कुछ लहरयुक्त, और पुरुषोंकी दाढ़ी-मूँछ घनी। चित्रों द्वारा इनके चेहरोंकी बनावट अधिक स्पष्ट की जा सकती है। हब्शी अथवा लेमूरिअन विभागके लोगोंकी चौड़ी नाक तथा मोटे ओठ स्पष्ट हैं (चित्र १४, १५)। हमारी दृष्टिमें ये चेहरे सुन्दर न लगें, किंतु फिर भी वे सर्वथा कुरूप नहीं हैं चित्र १४ के चेहरेसे शक्ति और गौरव प्रकट होता है; चित्र १५ का चेहरा कलाकी दृष्टिसे सुडौल और गठा हुआ है।

दूसरा विभाग ॲटलाण्टियन अथवा मंगोल जातिका है। इसके उदाहरण चित्र १६, १७ और १८ हैं। चित्र १६ कोलंबियाकी आदिम निवासी महिलाका है; गालकी हड्डी ऊँची, बाल लंबे और सीधे। चित्र १७ अमेरिकाके रैड-इंडियनका है और चित्र १८ एक चीनी रईसका। इनके चेहरों पर बाल कम हैं। कॉकेशिअन अथवा आर्य-जातिके लोगोंसे तो हम परिचित ही हैं। कह

सकते हैं कि आर्य-जातिके लोग पूर्ववर्ती जातियोंके लोगोंसे अधिक सुन्दर तथा सुडौल होते हैं। ये अधिक सचेतन और संवेदना-शील भी होते हैं। इनके उदाहरण चित्र १९ और २० में हैं। एक चित्र एक भारतीयका है और दूसरा एक अंग्रेज़का।

आजकी मानव-जातिके लोगोंकी अपनी-अपनी सभ्यताएँ हैं। परन्तु कोई भी सभ्यता सदैव नहीं रहती। निनेवा, टायर, ग्रीस और रोमकी जो गति हुई, वही एक दिन सभीकी होगी। कुछ जातियाँ तो विना कोई चिन्ह छोड़े ही सर्वथा विलीन हो जायँगी और कुछ यूनान (ग्रीस) की तरह मानव-जातिको अपना संदेश देती जायँगी। इतिहासके अध्ययन द्वारा हम सभ्यताओंके उत्थान और पतनका कुछ हाल जान सकते हैं, किन्तु इतिहासके अध्ययन करते समय हमारी आँखोंपर समय और परिपाटीका चश्मा चढ़ा रहता है और हम यह निश्चित रूपसे नहीं कह सकते कि हम सर्वथा निष्पक्ष निष्कर्षपर पहुँच पाते हैं। तो भी मानव-जातिके भूतकालका अध्ययन किये बिना, हम न तो वर्तमानको ही ठीक-ठीक समझ सकते हैं और न उचित भविष्यका निर्माण ही कर सकते हैं; और हमारा जीवनदर्शन भी तथ्यके अनुकूल नहीं हो सकता।

थिऑसोफ़ी गत सभ्यताओंके अध्ययनका एक नया मार्ग बतलाती है। इस रीतिसे अध्ययन करनेमें भूतकाल वर्तमान-

का रूप धारण कर लेता है और फिर इतिहास और दन्त-कथाओंके अध्ययनकी कोई अधिक आवश्यकता नहीं रहती। इस रीतिको समझाना तनिक कठिन है, फिर भी प्रयत्न करना ही पड़ेगा, क्योंकि यह जीवनका एक बड़ा भारी तथ्य है और थिऑसोफीके निरूपणमें बार-बार इसकी चर्चा होगी।

प्रथम अध्यायमें कहा गया था कि जीवन और रूपके अभ्यन्तरमें, या यों कहियें कि उसके हृदय और आत्मा-स्वरूप, एक चेतना है। समस्त विकास-क्रम इस चेतनाका प्रकट रूप है और हम सभी उसीमें स्थित हैं, उसीके कारण जीवित हैं, या यों कहिये कि उसीके अंशस्वरूप हैं। थिऑसोफीकी भाषामें उसे 'लोगॉस' (Logos) या ईश्वर कहते हैं। इस चेतनाके समक्ष भूतकाल कुछ है ही नहीं। जो कुछ हमारी चेतनाके अनुसार भूत-कालमें हो चुका है, वह सब इसके लिए अभी हो रहा है। 'लोगॉस'की दृष्टिमें भूतभी वर्तमान है और भूतकालका प्रत्येक क्षण वर्तमानमें हो रहा है और उसकी चेतनाका अंग है। इस अनन्त वर्तमान (Eternal Present) को मानव-मस्तिष्क ठीक-ठीक समझ नहीं सकता; फिर भी यह एक महान् सत्य है और यदि हम इसे ठीक-ठीक समझ पायें तो हमारे लिए प्रत्येक वस्तुका मूल्य और माप-दंड ही बदल जायगा।

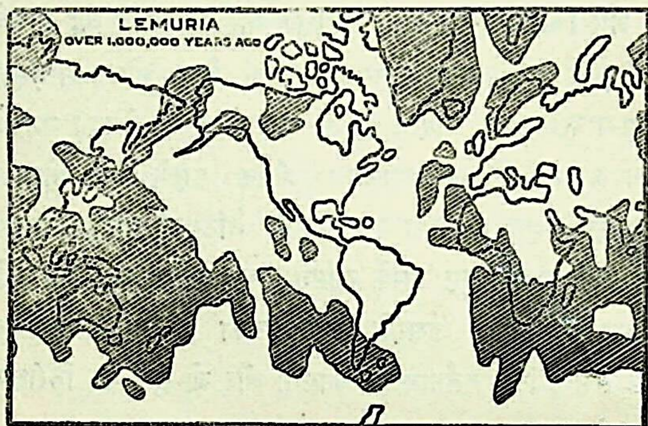
अनन्त वर्तमानका यह रहस्य यद्यपि अत्यन्त गूढ़ और आश्चर्यजनक है, फिर भी मानव इसे कुछ-कुछ जान सकता है। मानव, विकासशील प्राणी, सचमुच अपने कर्ताके ही प्रतिरूप बनाया गया है और एकदिन मानव भी उस विराट पुरुषके स्वरूपको प्राप्त होगा। इसलिए अपनी मानवीय चेतनाकी छिपी हुई शक्तियोंका विकास करके मानव उस परमपुरुष 'लोगॉस' की चेतनाको स्पर्श कर सकता है और इस प्रकार उसकी दृष्टिसे भूतकालको वर्तमानके रूपमें देख सकता है। भूतकालके चित्र उसकी आँखोंके सामनेसे गुज़रते नहीं हैं, उन्हें यह पर्देपरके चलचित्रोंके समान नहीं देखता, वरन् वह स्वयं उस तथाकथित भूत-कालमें जीवित हो उठता है। उसे यह निश्चित कर लेना होता है कि भूतकालके किस अंशका वह निरीक्षण करना चाहता है और तव वह उसमें उपस्थित हो जाता है और उसका अनुभव करने लगता है। यदि वह पृथ्वीके घनी-भूत होनेसे पहिलेकी अवस्था जानना चाहता है, तो आजसे लाखों वर्ष पहिलेके समयमें वह जीवित हो जाता है और उसकी चारों ओर गली हुई धातुएँ बहती दीख पड़ती हैं; उस समयके विस्फोटका भयंकर शब्द उसे सुनाई देता है और उस समयकी गर्मीके ऊँचे तापमान तथा चारों ओरके दबावका वह अनुभव करता है। यह कोई स्वप्नावस्था नहीं रहती। यह तो ऐसे ही हुआ जैसे किसी

जनाकीर्ण नगरमें कोई पहुँच जाय, लोगोंको आते-जाते देखे और उनका कोलाहल सुने ; आकाशमें सूर्य अथवा बादलोंको देखे और जिस वस्तुका चाहे निरीक्षण करे। यदि वह ग्रीसके पेरिक्लीज़का व्याख्यान सुनना चाहता है या रोमन सीज़रकी विजय-यात्रा देखना चाहता है, तो वह एथेन्स या रोमकी नगरीमें पहुँच जायगा और उस कालका जीवन उसके समक्ष होगा। वह ग्रीसकी यूनानी भाषा या रोमकी लैटिनकी वार्ता सुनेगा। समय-रूपी ग्रन्थके पृष्ठ उसके सामने खुल जायँगे और जो चाहे वह पढ़ सकेगा। ईश्वरके स्मृति-पटका स्पर्श करनेपर भूत काल उसके लिए वर्तमान बन जायगा और जो कुछ वह निरीक्षण कर सके, करेगा।

थिऑसोफ़ीके शोधकोंने इस प्रकारकी शोध की है, ईश्वरके स्मृति-ग्रन्थका अध्ययन किया है ; और इस प्रकार बहुत कुछ वृत्तान्त थिऑसोफ़ीकी शिक्षाओंके अन्तर्गत आ गया है। जो कुछ शोध वे कर सके हैं और उससे प्राचीन सभ्यताओंके सम्बन्धमें जिस निष्कर्षपर वे पहुँचे हैं, उसका वर्णन आगे संक्षेपमें किया जायगा।

बहुत समय हुआ आजसे प्रायः दस लाख वर्ष पहले पृथ्वीपर जल और थलका विभाग आजसे बहुत भिन्न था। एशियाका उत्तरी और मध्यभाग, अमेरिकाके दोनों विभाग तथा प्रायः समस्त यूरोप जलमग्न थे। भारतके दक्षिणमें दूर तक

थल भाग था। ऑस्ट्रेलिया भी उसी महाद्वीपका एक अंश था। (चित्र २१ में थल रंगा दिखलाया गया है और



चित्र २१. लेमूरिया १,०००,००० वर्ष पूर्व

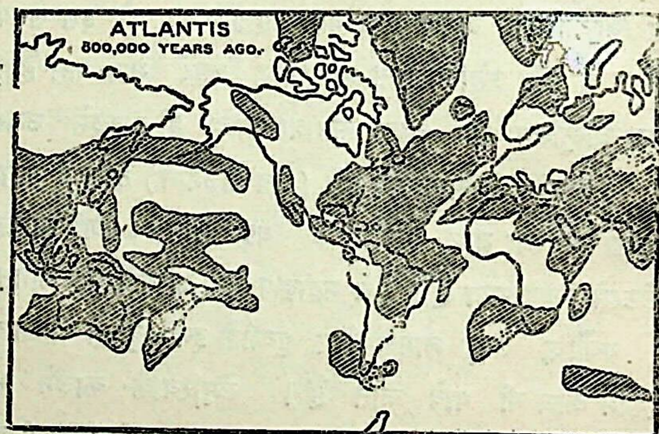
जल सादा। आजके जगत्का मानचित्र भी दिखाया है जिससे समझनेमें सहायता होगी।) पृथ्वीका धरातल बराबर बदलता रहता है। कहीं कुछ थलका अंश जलमग्न हो रहा है, तो कहीं नया थल विभाग ऊपर आ रहा है; ऐसी अवस्थामें लाखों वर्ष पहिले जल और थलका रूप क्या था, यह कैसे जाना जा सकता है? एक तो ईथरके गुप्त चित्रों (आकाशिक रेकॉर्डस) का निरीक्षण करके और दूसरे सिद्धसंघके सुरक्षित अजायबघरोंके मानचित्रोंसे। जिस सिद्धसंघकी चर्चा इस ग्रन्थके आरम्भिक अध्यायमें की जा चुकी है उसके पास पृथ्वीपर मानवके आरम्भ होनेसे लेकर आज तक

की ठठरियाँ, प्रस्तरी-भूत अवशेष, मानचित्र, और पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं, जिनसे पृथ्वीपरके पशुओं और मानवोंका विकास आज भी जाना जा सकता है। जो लोग अपने त्याग और मानव-सेवाके बलपर इस अजायबघरकी वस्तुओंके अध्ययनका अवसर पाते हैं, उनको असीम आनन्दकी प्राप्ति होती है। वहाँ मिट्टीके बने ऐसे चित्र सुप्राप्य हैं, जिनसे भिन्न-भिन्न युगोंमें सृष्टिकी जो रूपरेखा थी, सहजही जानी जा सकती है। इसी निरीक्षणके आधारपर दसलाख, आठलाख, दो लाख और ग्यारह हजार वर्ष पहलेके पृथ्वीके चार मानचित्र प्रकाशित हुए हैं। (देखिये चित्र २१ से २४ तक)

इनमेंसे पहले मानचित्र (चित्र२१) को देखकर हमें जान पड़ता है कि आजके अधिकांश स्थलका धरातल तब जलमग्न था और विषुवतरेखासे दक्षिण एक बड़ा महाद्वीप था जो इस समय जलमग्न है और जहां प्रशान्त महासागर लहरें मार रहा है; केवल ऑस्ट्रेलिया और जावा, सुमात्रा आदि ही जलसे ऊपर हैं। थिऑसोफीके साहित्यमें इस (अब जलमग्न) दक्षिणी महाद्वीपको लेमूरिया नाम देते हैं। यह नाम प्राणिविद्याविज्ञ स्क्लेटरसे लिया गया है। ऐसे महाद्वीप का अस्तित्व वह मानता था, क्योंकि लेमूर नामके बंदर पृथ्वीके इन बहुतही विशाल प्रदेशोंमें आज भी पाये जाते हैं। लेमूरियाके कालमें भी पृथ्वी पर मानव बस्ती थी और इस भूभागके निवासी ही

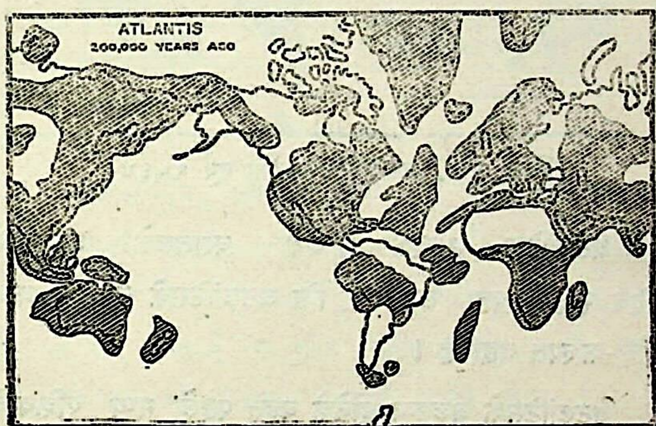
प्रथम प्रकारके थे जो चित्र १४, १९ में दिखाए गये हैं। इन्हींकी सन्तान आज हब्शी तथा अन्य ऊन-सरीखे बालवाले लोग हैं। इनकी ऊँचाई अवश्य अपने पूर्व-पुरुषोंसे बहुत कुछ कम हो गयी है।

धीरे-धीरे समयके साथ धरातलका रूप बदलता रहा और आठ लाख वर्ष पहलेका भू-खंड, (चित्र २२) आजका भारत, मध्यएशिया अफ्रिकाका उत्तरी और पूर्वी भाग, अटलाण्टिक महासागरके नीचे-का धरातल, जिसमें अमेरिकाका भी कुछ भाग सम्मिलित था, मिलाकर बना था। इसे थिऑसोफीके साहित्यमें अटलाण्टिस कहते हैं। मंगोल जातिके लोगोंके पूर्वज यहींके आदि निवासी थे और आज उन्हींकी सन्तान चीनके निवासी तथा उत्तरी और दक्षिण अमेरिकाके रेड इण्डियन लोग हैं।



चित्र २२. अटलांटिस ८००,००० वर्ष पूर्व

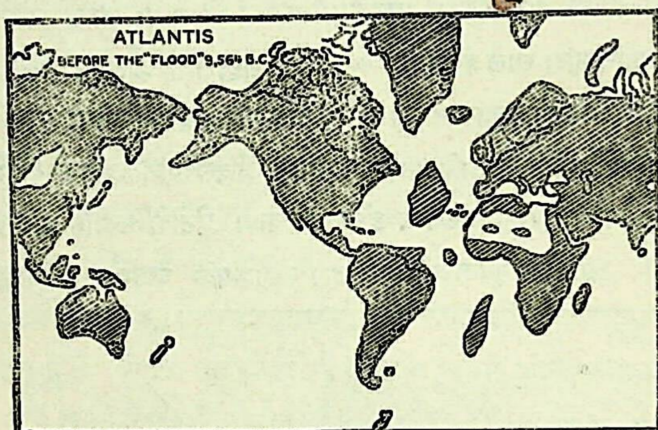
दो लाख वर्ष पहले तक अनेक परिवर्तन हुए (चित्र २३) और अटलाण्टिस और लेमूरियाका रूप बिलकुल बदल गया। शेष समस्त अटलाण्टिस महाद्वीप जलमग्न हो गया; आजके यूरोप का अधिकांश स्थल हो गया। अफ्रिकाके सहाराको छोड़कर एशिया, यूरोप और अफ्रिका, उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका प्रायः पूरे-पूरे बन गये और अटलाण्टिसका मध्यभाग केवल एक द्वीपके रूपमें रह गया। इसके जलमग्न होनेकी कथा प्लेटोके ग्रन्थोंमें मिलती है। प्लेटोके पूर्वज सोलनसे इस महाद्वीपके जलमग्न होनेकी



चित्र २३. अटलांटिस २००,००० वर्ष पूर्व

कथा प्राचीन मिश्रके पुजारियोंने कही थी। ईसासे ९५६४ वर्ष पहिले (चित्र २४) अटलाण्टिसका यह शेषांश भी जलमग्न हो गया और साथही सहाराकी मरुभूमि ऊपर उठ आयी, मध्य एशियाका समुद्र गोबी-रेगिस्तान बन गया और

पृथ्वीका धरातल करीब-करीब उसी आकारको पहुँच गया जो कि आज है ।



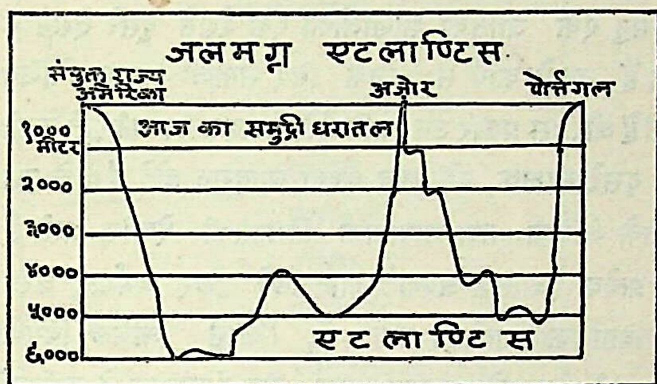
चित्र २४. अटलांटिस—ईसा पूर्व ९५६४

अटलांटिक समुद्रके नीचेके धरातलके अन्वेषणसे (चित्र २९) पता लगता है कि अटलांटिसके डूबनेकी कथा कपोल-कल्पित नहीं है ।

अटलांटिसके जलमग्न होनेके बहुत पहले मध्य एशियाके बीच, समुद्रके दक्षिणी किनारे पर, एक नयी जातिका जन्म हो चुका था । येही आर्यजातिके पूर्व पितामह थे । धीरे-धीरे ये दक्षिण और पश्चिममें फैलकर हिन्दू, अरब, ईरानी, ग्रीक, रोमन, केल्ट, स्लाव और ट्यूटन कहलाये ।

इस प्रकार लेमूरिया, अटलांटिस तथा एशियामें ये तीन

मानव जातियाँ जन्मीं, जिनकी सन्तान आज सारे संसारमें बसी हुई हैं।



चित्र २९

थिऑसोफीका कथन है कि जातियाँ योंही अपनेआप बनती और बिगड़ती नहीं हैं; उनका उत्थान और पतन एक विधानके अनुसार होता है। विश्वात्माने मानव जातिके आरम्भसे ही यह निश्चित कर रखा है कि कौन जातियाँ और उनके अनुकूल कौन धर्ममत और विज्ञान संसारमें एकके बाद एक प्रगट होंगे और उस विश्वात्माके कार्यकर्ता, सिद्धसंघके सदस्य, उस विधानकी पूर्ति स्थूल सृष्टिमें करते रहते हैं। येही सिद्धजन प्रकृतिकी दृश्य और अदृश्य शक्तियोंका उपयोग करते हुए, अनंतकालसे विकासकी परम्पराको संचालित करते आते हैं। इस संघमें दो सिद्ध पुरुष प्रत्येक मानवजातिके भाग्यविधाता

होते हैं। एक तो मनु होते हैं, जो मानव-जातिके शरीरकी बनावट तथा उसमें परिवर्तनादिकी देखरेख करते हैं। येही मनु एक जातिकी शाखाओंको एक देशसे दूसरे देशमें ले जाते हैं, उनके कार्य संचालनके लिए समाज विभाग निश्चित करते हैं और इस प्रकार उन जातियोंके ईश्वरदत्त कार्यकी पूर्ति करते हैं। दूसरे संरक्षक, बोधिसत्व अथवा जगद्गुरु होते हैं। वे उस जातिके बौद्धिक तथा भावात्मक विकासकी देखरेख करते हैं और प्रत्येक जातिके अथवा जातिखंडके लिए धर्ममत, कला और विज्ञानका आयोजन करते हैं, जिससे अखिल विश्वके सूत्रधारकी योजनाके अनुसार इस विश्व-रंगमंचपर वे जातियाँ अपना कार्य पूरा कर सकें।

विधि-विधानके अनुसार पृथ्वीपर मानव जातिके विकास-कालमें सात जातियाँ समय-समयपर प्रकट होती हैं, जिनको हम मूलजातियाँ कहते हैं। इन सात मूलजातियोंमेंसे अबतक पाँचका उदय हो चुका है। प्रथम और द्वितीय मूलजातियाँ इतने पहिले उदित और अस्त हुई कि अब उनकी संतान पृथ्वीपर हैं ही नहीं। शेष तीनकी चर्चा ऊपर की गयी है।

प्रत्येक मूलजातिकी सात उपजातियाँ होती हैं, जो क्रमसे अधिकाधिक विकसित रहती हैं। प्रत्येक उपजातिमें वे सब बौद्धिक गुण पाये जाते हैं, जो उस मूलजातिके प्रधान लक्षण हैं; किन्तु साथ ही प्रत्येक उपजातिकी अपनी विशेषता होती है।

मानव जातियाँ और उपजातियाँ

३ लेमूरियन		४ अटलांटियन		५ आर्य		६	७
४	हब्शी वंश के लोग						
५							
६							
७							
		१	रमोहल				
		२	तूलावत्ली				
		३	टॉल्टेक				
		४	तुरानियन (चीनी)	१	हिंदू, मिश्री आर्यसेमाइट		
		५	मूलसेमाइट				
		६	अक्काडी	२			
		७	मंगोल	३	ईरानी		
			जापानी मलायाके	४	केल्ट		
				५	ट्यूटन		
				६	ऑस्ट्रो-अमेरिकन	१	
				७	दक्षिणी अमेरिकन	१	२

चित्र २६

चित्र २६ में तीनों जातियों और उनकी उपजातियोंके नाम

दिये गये हैं। इनके प्रतिनिधियोंके चित्र हम पहिले देख चुके हैं। अभी भी तीसरी मूलजाति, लेमूरियनकी अंतिम शाखाओं के हव्शी लोग संसारमें पाये जाते हैं। आरंभिक उपजातियोंके कोई वंशज अब नहीं हैं। यों तो सर्वथा शुद्ध कोई भी जाति आज नहीं मिलती। सबमें कुछ न कुछ वर्णसंकर है। फिर भी मूल जातियोंके चिन्ह और लक्षण उनमें अब भी पाये जाते हैं।

लेमूरियन जातिकी सातवीं शाखासे चौथी मूलजातिके मनुने चौथी या अटलांटियन मूलजातिका संगठन किया। इस मूल जातिकी सात शाखायें हुईं। पहली और दूसरी शाखाके शुद्ध प्रतिनिधि तो मिलते नहीं; उनकी कुछ ठठरियाँ अवश्य मिली हैं, जिसमें "फरफूज़ मैन" पहलीका तथा "क्रो-मैग्नन मैन" दूसरीका प्रतिनिधि समझा जा सकता है। तीसरी उपजाति, टॉल्टेकके प्रतिनिधि उत्तरी, दक्षिणी और मध्य अमेरिकाके रेड इन्डियन लोग हैं। चौथी उपजाति अटलांटिससे पूर्वको चलती हुई चीन पहुँची और चीनके कुछ भागोंमें रहनेवाले लम्बे, पीले लोग उनकी संतान हैं। ये चीनमें बहुतायतसे पाई जानेवाली सातवीं उपजातिकी संतानसे भिन्न हैं। इनकी पाँचवीं उपजातिकी संतान श्वेत रंगवाले यहूदी हैं और उत्तरी अफ्रिकाके कबीली भी इन्हींसे हैं। उनकी छठी उपजाति अक्काडियन और फिनीशियन लोगोंकी थी, जो

भूमध्यसागरमें व्यापार करते थे। और सातवीं या मंगोलियन शाखा चौथी या तुरानियन जातिके साथ चीनमें जा बसी और वहाँ फैली। जापान और मलायाके लोग इसी मूल जातिकी एकसे अधिक शाखाओंसे मिलकर बने हैं। चौथी मूलजातिका अंतिम बार उत्थान इन्हीं जापानी लोगों द्वारा हुआ था, जो सातवीं उपशाखासे अनेक बातोंमें भिन्न हैं।

पाँचवीं मूलजातिके मनुने अपनी नवीन जातिको चौथी जातिकी पाँचवीं शाखासे संगठित किया था। पाँचवीं अर्थात् आर्य जातिकी भी अपनी सात उपजातियाँ हैं। जिनमेंसे अभी पाँच ही प्रगट हुई हैं। पहली जातिके आर्य हिन्दू लोग हैं, तथा प्राचीन मिश्रके उच्चजातीय राज्यकर्ता लोग भी इसीमें थे।

(आर्य सेमाइट)

दूसरी उपजातिके प्रतिनिधि आज अरब तथा मूर लोग हैं। तृतीय ईरानी उपजातिके लोग प्राचीन ईरानके निवासी थे और आजके पारसी लोग उन्हींकी संतान हैं। चौथी केल्ट उपजाति प्राचीन रोम और ग्रीसमें बसी थी। उसके वंशधर इटली, फ्रान्स, ग्रीस, पुर्तगाल तथा स्पेनमें पाये जाते हैं और कुछ अब दक्षिणी और मध्य अमेरिका तथा मेक्सिकोमें जा बसे हैं। आयरिश, स्कॉच, वेल्श, आदि भी इन्हीं लोगोंमें से हैं।

पांचवी उपजाति ट्यूटन लोग हैं जिनमें अंग्रेज, जर्मन, डच, स्लाव, रशियन तथा स्वीडन-नॉर्वे निवासी सम्मिलित हैं

और उनके वंशधर सारे संसारमें फैले हुए हैं। कई उप-जातियोंके सम्मिश्रणसे आर्यजातिके मनु आज नयी छठी उपजाति की रचना कर रहे हैं। अमेरिकाके संयुक्तराज्य, ऑस्ट्रेलिया तथा न्यूज़ीलैंडमें यह उपजाति बन रही है। सातवीं उपजाति अभी सुदूर भविष्यके गर्भमें है। परंतु ब्रेज़िल (दक्षिणी अमेरिका) में कभी-कभी ऐसे बच्चे जन्मते हैं जिनकी बनावट और मुखाकृति कुछ भिन्न होती है, जो सातवीं उपजातिके हो सकते हैं। भावी छठी मूलजातिके मनु, इसी शीघ्र प्रकट होनेवाली छठी उपजातिसे, अपनी मूलजातिके लिए बीज चुनेंगे। और आजसे दसों हज़ार वर्ष बाद सातवीं मूल जातिके मनु छठी जातिकी सातवीं शाखासे अपनी जातिके बीज चुनेंगे।

मूल तथा शाखा जातियाँ इस जगतके रंगमंचपर उस अखिल विश्वके सूत्रधारकी इच्छानुसार अपना अभिनय करती हैं; और इस प्रकार हम लोग इन जातियों तथा उपजातियोंमें जन्म लेकर विभिन्न अनुभव प्राप्त करते हैं। इसीलिए भगवान मनु, जातियोंमें वर्ण और स्वभावकी विभिन्नता उत्पन्न करते हैं। कभी पहाड़ों पर और कभी समुद्र तटपर उन्हें ले जाते हैं। इसीलिए भगवान बोधिसत्त्व भिन्न-भिन्न उपजातियोंमें सत्यके भिन्न-भिन्न स्वरूपोंका उपदेश देते हुए नाना धर्म तथा दर्शन प्रकट करते हैं। सभी धर्म और दर्शन भगवान बोधिसत्वके विधानके अनुसार ही प्रकट होते हैं।

अटलाण्टियन—चौथी जाति

उपजाति	नाम	वर्ण	विशेषताएँ
प्रथम	रमोहल	गहरा श्याम-रक्त वर्ण	दीर्घाकार
द्वितीय	तुलावत्ली	रक्तपीत वर्ण	पर्वतारोही
तृतीय	टॉल्टेक	ताम्ररक्त वर्ण	शासक
चतुर्थ	तुरानियन	पीत वर्ण	उपनिवेश-संस्थापक
पंचम	सेमाइट	श्वेत वर्ण	योद्धा
षष्ठ	अक्काडियन	श्वेत वर्ण	नौकारोही
सप्तम	मंगोल	पीत वर्ण	कृषक

चित्र २७-क

चित्र २७ में इन जातियोंके गुण-विशेष दिखाये गये हैं और इन जातियोंकी उपयोगिता समझ लेनेके लिए हमें एक जीव विशेषको लेकर यह कल्पना करनी होगी कि वह पहले अटलांटियन जातिकी प्रथम शाखामें जन्म लेता है। उस दीर्घाकार वन-वासीके रूपमें उसके विचित्र अनुभव होंगे और पहाड़ी लोगोंमें जन्म लेने पर उस जीवके अत्यंत कठोर अनुभव होते हैं। फिर टॉल्टेक जातिमें पेरू या इसी प्रकारके किसी देशमें जन्म लेकर वह शासन-कार्यका अनुभव करेगा—किसी गाँव या प्रान्तके शासनका दायित्व उसके कंधों पर होगा और समाजके हितके लिए उसे अपने व्यक्तिगत भावोंको उन हितोंमें

आर्य—पांचवी मूलजाति

उपजाति	नाम	वर्ण	विशेषताएँ
प्रथम	हिन्दू	श्वेत, गेहुआँ	दार्शनिक
	मिश्र-देशवासी		व्यवहार कुशल
द्वितीय	आर्य सेमाइट	श्वेत	कबीलेवाले
तृतीय	ईरानी	श्वेत, गेहुआँ	व्यापारी
चतुर्थ	केल्ट	श्वेत	आदर्शवादी; भावुक
पंचम	ट्यूटन	श्वेत	वैज्ञानिक, व्यक्तिवादी-व्यापारी
षष्ठ	ऑस्ट्रो-अमेरिकन	श्वेत	सहयोग प्रिय, अंतः-प्रज्ञायुक्त, बंधुभाववाले
सप्तम	लॅटिन-अमेरिकन		कवि, संगीत प्रिय, कलाकार, कला-निर्मिति द्वारा आत्मसाक्षात्कार

चित्र २७-ख

विलीन कर देना होगा। तुरानियन उपजातिमें जन्म लेकर वह नये प्रदेशोंकी खोजमें विचरण करेगा और नयी बस्ती बसानेके लिए वह प्रकृतिसे संग्राम करेगा। सेमाइट जीवनमें वह प्रधानतः योद्धा होगा और अपने जीवनको कबीले या कुलके हित के लिए सदा बलिदान करनेके लिए तत्पर रहेगा। अक्काडी

जीवनमें वह नौकारोही होकर जलपोतमें बैठकर सागरके वक्ष-स्थल पर विचरण करेगा और वस्तुओंके क्रय-विक्रयमें अपनी चातुरीको अधिक सजग और सफल बनायेगा। फिर चीनमें जन्म लेकर अपनी पैतृक खेतीकी भूमिके कमानेमें संलग्न रहेगा और अपना गाँव छोड़कर कदाचित ही कहीं जाएगा। अपने गाँवके पड़ोसियोंसे उसका गहरा परिचय रहेगा और उनके सुख-दु:खमें लीन रहकर वह जीवनके बहुतसे रहस्योंको समझेगा। सैनिक या नाविक जीवनसे दूर, वह शांतिसे जीवन व्यतीत करेगा।

यदि वह नारी होकर इन्हीं उपजातियोंमें जन्मा, तो उसके अनुभव दूसरेही प्रकारके होंगे। नया दृष्टिकोण होगा उसके जीवनका, और नयी अनुभूतियाँ जागृत होंगी, जिनके बिना उस जीवका अनुभव अधूराही रह जाता।

जन्मान्तरमें विचरण करते हुए जीव अब आर्य जातिमें जन्म लेता है। कदाचित् भारतमें उसका जन्म होता है और अवश्य ही भारतके दार्शनिक दृष्टिकोणकी छाप उसपर पड़ेगी और विरक्तिकी हल्की छाया उसपर अपना प्रभाव डाले बिना न रहेगी। फिर यदि प्राचीन मिश्र देशमें उसी जीवने जन्म लिया, तो दार्शनिक स्वप्नोंकी दुनियासे दूर, आनंदी तथा व्यवहार कुशल, वह अपने स्वभावका एक नया पहलू गढ़ेगा। अरबमें जन्म लेकर वह मरुभूमिके जीवनका रस चखेगा और प्रकृतिकी

विशालता और निर्जनताका अनुभव उसे एक सूक्ष्म ग्रहणशीलता प्रदान करेगा। ईरानका जीवन उसे वाणिज्य और उद्योगकी सफलता-असफलताका अनुभव करायेगा और उसमें वह विश्वसनीयता, सजगता और सत्य-प्रियताके गुण सीखेगा। उसके शब्दों और विचारोंमें कवित्वका पुट होगा। केल्ट जातिमें जन्म लेकर एथेन्स नगरमें रहकर वह जल और थलमें देवताओंके निवासकी कल्पना करेगा और जीवनमें सौंदर्यको प्रधानता देगा। अपनेको देववंशी मान कर वह अपने ज्ञानको सर्वांगीण बनाना चाहेगा। यदि रोममें जन्मा तो कुल और राष्ट्रकी महत्ताका अनुभव करेगा और नियमोंका पालन, राजाज्ञाका उल्लंघन न करना, ये उसके धर्म होंगे और इस प्रकार आज्ञाकारी होकर वह शासन करना सीखेगा। फ्रान्स या इटलीमें जन्म लेकर वह भावुकतासे ओत-प्रोत होगा, प्रत्यक्षका विचार न करके वह कल्पना ही में लीन रहेगा। या फिर आयर्लैंड का निवासी होकर स्वप्नों या अंत-स्फूर्तियोंमें तथा हर्षोन्माद या उदासीमें रहेगा।

भावी छठी उपजाति—जिसे हमने ऑस्ट्रो-अमेरिकन नाम दिया है—क्या-क्या प्रभाव डालेगी और कौन-कौन गुण देगी, यह ठीक-ठीक अभी कहा नहीं जा सकता। इस जातिका आरम्भ ऑस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्डमें हो रहा है। उनका विशेष गुण भ्रातृत्वका है। माता-पिता और संतानके आपसी सम्बन्ध भी एक नये प्रकारकी मैत्रीकी भावनासे परिपूर्ण हैं। सहयोग,

व्यापारमें बड़ी-बड़ी कम्पनियोंका निर्माण, इनके व्यापारिक जीवन-की विशेषता है। अन्तर्दृष्टि, बातोंको समझनेमें एक विशेष प्रकारकी सीधी पहुँच और खुला प्राकृतिक जीवन और सामूहिक जीवनके प्रति प्रेम, ये इनके स्वभावकी विशेषताएँ हैं।

सातवीं जाति तो अभी सूदूर भविष्यके गर्भमें है। दक्षिणी अमेरिकाके निवासियोंकी वास्तुकला, काव्यप्रियता और गायन प्रेम आदिमें उस भावी जातिका कदाचित् कुछ आभास मिलता है। ग्रीस और रोमसे भी अधिक भव्य उसका जीवन होगा। सौंदर्यसे ओतप्रोत, वे अपने दैवी स्वरूपको पहचानेंगे और अपने सर्जन-कार्य द्वारा अपने देवत्वको मूर्त स्वरूप देंगे।

इस प्रकार सभ्यताएँ बनती और बिगड़ती हैं, परन्तु इन सबका तात्पर्य जीवके लिए पुनर्जन्म, जन्मांतर है। ये सभ्यताएँ हमारे अनुभवका क्षेत्र हैं। बारम्बार इनमें जन्म लेकर हम अपने अनुभवोंको परिपक्व करते हैं। परम पिता सभ्यताओंको बनाता है, उपयोगी हैं तब तक उन्हें जीवित रखता है, और फिर उनका कार्य पूरा हो जाने पर उन्हें जल-मग्न कर देता है अथवा उन्हें अग्नि-समाधि दे देता है; परन्तु वे विश्व-नाटकके अंक और दृश्य ही हैं, जिन्हें वह विश्व-सूत्रधार हमारे हितके लिए खेलता रहता है। उस नाटकमें प्रत्येकको अपना अभिनय कुशलतापूर्वक करना है, क्योंकि तभी हम एक दिन उस परमपिता, उस नाटकके सूत्रधारके समान हो सकेंगे।

अध्याय ३

पुनर्जन्मके नियम

कभी-कभी सहस्रों वर्षोंमें एक ऐसी विचार-प्रणाली संसारमें जन्म लेती है, जो मानव जातिके लिए एक नये युगका आरम्भ कर देती है। पिछली शतीमें इसी प्रकारकी एक विचार प्रणालीका आविर्भाव हुआ--यह था विकास-सिद्धान्त। जिस प्रकार रात्रिकी अन्धियारीमें विद्युत्का प्रकाश कोने-कोनेको एक बार आलोकित कर देता है, ठीक उसी प्रकार विकास-सिद्धान्तने प्रकृतिकी समस्याओं पर प्रकाश डाला और मनुष्य प्रकृतिके बोझसे दबे रहनेके बदले, उसके कार्य-कलापको समझने लगा। अतीतकालके किसी युगमें इसी प्रकारका दूसरा विचार, पुनर्जन्मका सिद्धान्त, प्रगट हुआ था।

पुनर्जन्म, अर्थात् जीव बार-बार जन्म लेकर नये शरीरोंके द्वारा विचार और भावोंकी परिष्कृति करता हुआ उन्नतिके पथ पर अग्रसर होता है ; और विकास, अर्थात् रूप अधिकाधिक जटिल होते हुए अधिक उपयोगी बनते जाते हैं—ये दो सिद्धान्त

उस विश्वकर्माके बाँये और दाहिने हाथके समान एकसाथ सृष्टिको गढ़ते जान पड़ते हैं। केवल एकही सिद्धान्तके प्रकाशमें प्रकृतिकी समस्या पूर्णतया हल नहीं होती; यदि दोनों सिद्धान्तों-को अविच्छिन्न मान लिया जाय तो एक दूसरेको पूरा करता हुआ, यह युग्म-सिद्धान्त मानवके लिए एक जीवन-दर्शन उपस्थित कर देता है, जो मानवके विस्तारके साथ-साथ स्वयं विस्तृत होता जाता है।

यद्यपि पुनर्जन्म साधारणतया मनुष्य योनिके लिए ही लागू समझा जाता है, किन्तु वस्तुतः यह क्रम सृष्टिके सभी प्राणिओंके लिए लागू है। गुलाबके फूलका जीवन फूलके मुर्झानेके बाद गुलाबके समूह-आत्मा (ग्रूप-सोल) को लौट जाता है और फिर दूसरे गुलाबके रूपमें शरीर धारण करता है। जो कुत्तेका पिल्ला मर जाता है, वह भी अपने श्वान-समूह आत्माको लौट कर, फिर एक पिल्लेके रूपमें जन्म लेता है। मनुष्यके सम्बन्धमें अन्तर इतना ही है कि मरने पर जीव किसी समूह-आत्माका अंशमात्र न रहकर स्वयं व्यक्ति-चेतना बना रहता है और जब फिर जन्म लेता है तब अपनी समस्त पूर्व-अर्जित शक्तियोंको अपने साथ लाता है; उन्हें किसी औरके साथ बाँटता नहीं।

साधारण व्यवहारमें 'पुनर्जन्म' शब्दसे हम मानवके ही जन्मांतर का अर्थ लेते हैं और इसका व्यवहार तीन अर्थोंमें

करते हैं :—

१. प्रत्येक शिशुके जन्मके समय ईश्वर एक नये जीवका निर्माण नहीं करता, क्योंकि जीव तो पहलेही से किसी आध्यात्मिक स्थितिमें एक व्यक्तिके रूपमें था और पहले-पहल और अन्तिमवारके लिए उसने मानव शरीर ग्रहण किया। यह तो हुआ पूर्व अस्तित्व (Pre-existence) का सिद्धान्त।

२. मानव-जीव पहले कई बार शरीर धारण कर चुका है, कभी पशु-पक्षीका, कभी लता-गुल्मका और कभी मनुष्यका। और इसी प्रकार मृत्युके उपरान्त फिर मानव-शरीर धारण करने से पहले पशु-पक्षी-वृक्षादि भी हो सकता है। यह सिद्धांत "बहु-योनि-जन्मान्तर-वाद" (Transmigration या Metempsychosis) का है।

३. मानव-जीव इस वार जन्म लेनेसे पहले भी पुरुष या स्त्रीके रूपमें जन्म ले चुका है, और स्वतन्त्र व्यक्तित्व धारण करके मनुष्य बननेसे पहले वह जीव पशु या वृक्षके रूपमें भी रहा होगा, किन्तु स्वतन्त्र व्यक्तित्वके पश्चात् फिर पशु आदि नहीं होता। अब तो वह एक स्वतन्त्र, अविभाज्य, स्वयंचेतन व्यक्ति बन चुका है और पुरुष या स्त्रीके रूपमें ही जन्म लेगा, पशु या वृक्षरूपमें कदापि नहीं। यह पुनर्जन्म का सिद्धान्त है।

थिऑसोफीका मत है कि जब जीवका व्यक्तीकरण हो

जाता है, तब फिर मानवयोनि छोड़कर अन्य—पशु अथवा वनस्पति—योनिमें यह जीव जन्म नहीं लेता। थिऑसोफीके साहित्यमें इसी तीसरे अर्थमें पुनर्जन्म शब्दका व्यवहार होता है। यदि पशुयोनिमें पुनः जन्म लेना संभव होता तो इस अवनतिसे—स्थूल एवं मनोवैज्ञानिक—विकास-पथमें कोई लाभ न होगा।

यह थिऑसोफीका ग्रन्थ है। पुनर्जन्मके पक्षमें अथवा विरोधमें तर्क और प्रमाणोंका इस ग्रंथमें कोई स्थान नहीं है। प्रत्येक जिज्ञासुको अपने निरीक्षण और अध्ययन द्वारा इस तथ्यका ज्ञान उसी प्रकार प्राप्त करना है, जैसे एक विज्ञानका विद्यार्थी विकासक्रमका अध्ययन करता है। इस अध्ययनमें तो हम उन नियमोंकी चर्चा करेंगे, जिनके अनुसार जीव बार-बार जन्म लेता है। यह विवेचन उसी सीमा तक हो सकेगा जहाँ तक कि गुह्यविद्याके अभ्यासियों द्वारा अनुसंधान हुआ है।

पहले हमें स्पष्ट रूपसे यह समझ लेना है कि जन्म कौन लेता है? इसलिए जीव क्या है, यह जान लेना आवश्यक है। उसके शरीर क्या हैं और उसकी चेतनाके साधन क्या हैं—यह भी समझ लेना है। (चित्र २८)

मानव-जीव एक व्यक्ति है और ऐसी चेतना है जो अदृश्य पदार्थसे निर्मित रूपोंमें निवास करती है। इस 'जीव-शरीर' को, जो एक प्रकारके श्रेष्ठस्वर्गलोकके द्रव्यका बना रहता है,

आधुनिक थिओसॉफिकल साहित्यमें 'कारण-शरीर' (कॉज़ल बॉडी) कहते हैं। इसका आकार मानव सरीखा है किंतु यह स्त्री-पुरुष भेदके परे है। इसके चारों ओर एक आलोक-

जीवात्माके वाहन				
स्वर्ग लोक	उच्च मनोमय लोक	कारण शरीर	जिससे विकास पथ पर प्रगति की जाय	आदर्श — अमूर्त विचार
स्वर्ग लोक	निम्न मनोमय लोक	मनोमय शरीर	विचारोंका साधन	विचार — मूर्त विचार
भुवर्लोक		वासना शरीर	भावोंका साधन	संवेग — वासना
भूर्लोक		स्थूल शरीर	स्थूल क्रियाका साधन	इन्द्रियजनित प्रतिक्रिया — कर्म

चित्र २८

पूर्ण सूक्ष्म अदृश्य पदार्थका अंडाकृति घेरा रहता है जिसमें नाना प्रकारकी हल्के चमकीले रंगकी सूक्ष्म छटाएँ होती हैं। इसे 'कारण-शरीर' इसलिए कहते हैं कि ऊँचे-से-ऊँचे विचारों, भावों, और क्रियाओंका जन्म जीवके इसी स्थायी शरीरमें होता है। अमर और अनंत जीव इसी 'कारण-शरीर' में निवास करता हैं। इस आत्माका न जन्म है न मरण, न बाल्यकाल न वृद्धावस्था। यह अमर जीव प्रतिदिन स्नेह, चिंतन, और क्रियाकी अधिकाधिक शक्ति संचित करता रहता है। उसके जीवनका ध्येय है अपनेको जीवनके किसी विभागके कार्यमें दक्ष वना लेना और फिर अपने दैवी पिता परमेश्वरके विकास-क्रमके विधानकी शक्ति-भर सहायता करनेके योग्य बन जाना !

जीवात्माकी उन्नति अपने-अपने वास्तविक लोंकसे नीचे की भूमिकाओंमें जीवनके प्रयोग करके होती है। इसीलिए वह जन्म लेता है। अर्थात्—

(१) निचली मानसिक भूमिकाका पदार्थ वह अपने चारों ओर एकत्र करके उसका एक मनोमय शरीर वना लेता है और उसीके द्वारा वह विचार करता है, अर्थात् वाह्य जगत्की घटनाओंको विचारों और नियमों द्वारा समझता है।

(२) भुवर्लोकका पदार्थ एकत्र करके उससे वह अपना वासना शरीर बना लेता है, जिसके द्वारा वह भावनाओंका

अनुभव करता है अर्थात् बाह्य जगत्की घटनाओंकी अनुभूति व्यक्तिगत इच्छाओं, वासनाओं और संवेदनों द्वारा करता है।

(३) उसके उपयुक्त भौतिक शरीर उसे मिलता है जिसके द्वारा वह कर्म करता है। उस शरीरका उपयोग करके वह पदार्थके भौतिक गुणों——हल्का या भारी, उष्ण या शीतल, अचल या सचल——का ज्ञान प्राप्त करता है।

इन तीन शरीरोंके धारण करनेकी क्रियाको ही पुनर्जन्म कहते हैं। भौतिक शरीरके जीवनकालमें प्रत्येक स्पंदनके संपर्कसे उसके मस्तिष्कमें ज्ञान तु द्वारा इन्द्रियजन्य प्रतिक्रिया होती है। वासना शरीर इस प्रतिक्रियाका प्रिय अथवा अप्रिय अनुभव करता है। इसके बाद मनोमय शरीर वासना शरीरके अनुभवका ज्ञान ग्रहण करता है और उससे विचार उठता है और अन्तमें यह विचार कारण-शरीरमें जीवात्मा द्वारा अंकित होता है। तब जीवात्मा भौतिक जगत्की इस घटनाकी अपनी प्रतिक्रिया मानसिक और वासना शरीर द्वारा स्थूल मस्तिष्कको भेजता है। चेतनाके कार्य करनेके प्रत्येक क्षण कारण-शरीर और स्थूल मस्तिष्कमें यह विचार-विनिमय चला करता है। जब बहुतसे विचार इस प्रकार संक्रमित हो जाते हैं तो जीवात्मा उनका विश्लेषण करता है, उनका वर्गीकरण करता है और फिर जीवनके अनुभवोंसे विचार और कार्यके नवीन आदर्श बनाता है। इस प्रकार जगत्की घटना-

ओंसे वह स्थायी निष्कर्ष निकालता है और उनको आत्मसात करता है ।

जन्मके अन्तमें एक-एक करके देह छोड़नेकी क्रिया—मृत्यु—से कारण-शरीरस्थ जीवात्मापर कोई परिणाम नहीं होता । पहले भौतिक शरीरका त्याग होता है और भौतिक जगत्की घटनाओंसे संबंध छूट जाता है । किन्तु जीवात्मा अब भी मनोमय तथा काममय शरीर धारण किये हुए है । फिर वासना शरीरका त्याग होता है और वासना लोक या भुवर्लोक से संबंध छूट जाता है और जीवात्मा केवल निचले मानसिक जगत्का भान कर पाता है । अन्तमें यह मनोमय शरीर भी छूट जाता है और जीवात्मा अपने कारण शरीरमें ही निवास करने लगता है । अब उसके कोई निचले शरीर नहीं रह जाते । (इसका विशद वर्णन छठें अध्यायमें किया जायगा) जीवात्मा एकबार फिर मानो अपने निजधामको लौट आया है, यद्यपि अपने निवास स्थानको छोड़ा तो उसने कभी था ही नहीं; उसने केवल अपनी चेतना तथा इच्छा (Will) को स्थूलतर शरीरोंमें केन्द्रित कर दिया था और उसीको लोग उसका पुनर्जन्म कहते हैं । भिन्न-भिन्न अवधिके लिए जीवात्माने अपने स्थूल, सूक्ष्म आदि देहोंका उपयोग किया और जब उसे उनकी आवश्यकता न रही, उन्हें त्याग दिया । उसे हम जीवन और मृत्यु कहते हैं, जीवात्माके लिए यह केवल अपनी चेतनाका अंशमात्र निचले

स्थूलतर जगत्में भेजना और फिर उसे ऊँचे लोकमें लौटा लेना ही है।

पुनर्जन्मके नियमोंके अध्ययनका यही तरीक़ा है कि जीवोंके भौतिक शरीरमें जन्म लेने, उसमें जीवित रहने और फिर उसे मृत्युके समय त्याग देने तथा क्रमशः काममय तथा मनोमय शरीरोंको त्याग कर कारण शरीरको पुनः प्राप्त होने तकके क्रमका निरीक्षण किया जाय। इस क्रमकी प्रत्येक घटना ईश्वर (लोगॉस) की स्मृतिमें सुरक्षित रहती है और जो साधक अपने-को उस स्मृतिके सम्पर्कमें ला सकता है वह किसी भी जीवके बार-बार जन्म लेनेका अध्ययन कर सकता है।

इस प्रकारका निरीक्षण किया गया है और नियम निर्धा-रित करनेके लिए यथेष्ट सामग्री भी संगृहीत की जा चुकी है। पुनर्जन्मके संबंधमें प्रथम तथ्य यह है कि भिन्न-भिन्न प्रकारके जीवोंके लिए ये नियम भी भिन्न होते हैं। किसी भी एक समयमें सभी जीव एक ही सामर्थ्यके नहीं होते, क्योंकि कोई तो अधिक अनुभवी या ज्ञानवृद्ध जीव होते हैं और कोई अल्प अनुभवी या अल्पज्ञानी। यह अवस्थाका भेद कैसे और क्यों होता है यह 'पशुओंका विकास' नामक सातवें अध्यायमें बताया जायगा। पुनर्जन्मका उद्देश्य है कि जीव प्रत्येक जन्मके बाद अधिक ज्ञानवान और सशक्त हो जाय—प्रत्येक जन्मके अनुभवका यही परिणाम होना चाहिए। किंतु देखा

जाता है कि कोई जीव तो अनुभवसे शीघ्र ही शिक्षा ग्रहण करता है और कोई जीव बहुत धीरे-धीरे सीखता है—उसे प्रत्येक अनुभवको कई बार फिर-फिर दुहराना पड़ता है। अनुभवको ग्रहण कर सकनेके सामर्थ्यकी यह विभिन्नता जीवोंकी अवस्थाभेदका परिणाम है। और इन भेदों की दृष्टिसे जीवोंके पाँच बड़े-बड़े वर्ग किये जा सकते हैं।

नं० ५. सबसे अल्प-अवस्थावाले जीव वे हैं जो अपने उद्धत और असंस्कृत भावोंपर अधिकार नहीं कर पाते और जिनकी मानसिक शक्तियाँ निर्बल और अविकसित होती हैं। आजके जगत्में ये जीव जंगली और असभ्य जातियोंमें पाये जाते हैं और सभ्य जातियोंमें पाये जानेवाले पिछड़े तथा अपराधी वृत्तिके लोग भी इन्हीं जीवोंमेंसे हैं।

नं० ४. इनसे कुछ अधिक उन्नत वे जीव हैं जो जंगली अवस्थाको तो पार कर चुके हैं किंतु जिनकी मानसिक तथा कल्पनाकी शक्तियाँ अभी जागृत नहीं हुई हैं और जो नवीन कार्य आरम्भ करनेकी शक्ति नहीं रखते। मानव जातिके दसमेंसे नौ भाग इन्हीं दोनों प्रकारके जीवोंके हैं।

नं० ३. इन दो विभागोंके बाद सभी जातियोंके विकसित और सुसंस्कृत जीवोंका स्थान है। इनका मानसिक क्षितिज अधिक विस्तृत होता है और अपने परिवार अथवा राष्ट्रतक ही सीमित नहीं रहता। ये पूर्णत्वके आदर्शके लिए

उत्सुक रहते हैं और उसके प्रति सजग और सचेष्ट भी रहते हैं।

पुनर्जन्म ग्रहण करनेवाले जीवोंके प्रकार	
१. सिद्ध पुरुष	पुनर्जन्मकी आवश्यकता से परे
२. सिद्धि पथके पथिक	जो गुरुदेवकी देखरेखमें मृत्युके उपरांत शीघ्र ही फिर जन्म ग्रहण करते हैं और स्वर्ग-सुखका परित्याग करते हैं।
३. सुसंस्कृत जीव	(क) प्रत्येक उपजातिमें दो वार जन्म लेते हैं और उनके स्वर्ग-सुखका काल प्रायः १२०० वर्ष होता है। (ख) दो से अधिक वार एक ही उपजाति-में जन्म लेते हैं और उनका स्वर्ग-सुख प्रायः ७०० वर्षका होता है।
४. सरल मनके ५. अविकसित	एक उपजातिमें अनेक वार जन्म लेकर तब दूसरी उपजातिमें जन्म लेते हैं।

चित्र २९

नं० २. संख्यामें इनसे भी कम वे जीव हैं जिन्होंने यह जान लिया है कि जीवनकी उपयोगिता स्वार्थत्याग और समर्पणमें ही है। ये साधनपथके पथिक हैं और अपने भविष्यके निर्माणके लिए कार्यमग्न रहते हैं।

नं० १. और फिर हमारी मानवजातिरूपी वृक्षके

विकसित कुसुम हैं—ये सिद्धपुरुष, मानवजातिके ज्येष्ठबन्धु, जो इस पृथ्वीपर ईश्वरके प्रतिबिम्बस्वरूप हैं और दैवीविधानके अनुसार विकासक्रमका संचालन करते रहते हैं।

मूलजातियोंकी उपजातियोंमें पुनर्जन्म होता रहता है। इन उपजातियों की चर्चा गत अध्यायमें की जा चुकी है। पुनर्जन्मके नियमों पर विचार करनेसे पहिले हमें दो विभागोंको इन नियमों-से पृथक् कर देना है—एक तो सिद्धपुरुष जिन्हें पुनर्जन्मकी आवश्यकता ही नहीं और दूसरे 'साधनपथके पथिक'। सिद्ध पुरुष समस्त अनुभव प्राप्त कर चुके हैं। मानवको प्राप्त करनेके उद्देश्यकी वे पूर्ति कर चुके हैं। यद्यपि ईसाई धर्म-ग्रन्थके शब्दोंमें वे 'भगवानके मंदिरके स्तम्भस्वरूप' हो चुके हैं और उन्हें फिर बाह्य जगत्में जाना अनिवार्य नहीं है, फिर भी बहुतसे सिद्धपुरुष मानवजातिको सत्पथ बतानेके लिए जन्म लेते हैं और इस प्रकार साधारण जीवोंको ईश्वरके समीप लाते हैं। जब कोई सिद्धपुरुष जन्मग्रहण करता है तो वह स्वयं निश्चय करता है कि कब और कहाँ उसका जन्म होगा; क्योंकि वह अपने भाग्यका विधाता स्वयं बन चुका है।

जो साधन-पथके पथिक हैं वे सिद्धपुरुषोंके शिष्य होते हैं और अधिकतर मृत्युके कुछ महीने अथवा वर्ष बाद, बिना अपने वासना और मनोमय कोषको परित्याग किये, जन्म लेते हैं। साधारण व्यक्ति इन दोनों पुराने कोषोंको त्यागकर नवीन कोषों

के साथ जन्म लेते है। साधारण नियम यह है कि मृत्युके उपरान्त जीव कुछ काल भुवर्लोकमें व्यतीत करता है और फिर वासना शरीरको छोड़कर कई शताब्दियों तक निचले मनोमय अथवा स्वर्गलोकमें रहता है। इसी लोकको थिऑसोफीके साहित्यमें देवचन (Devachan) कहते हैं। यहाँ जीव सांसारिक जीवनकी अपूर्त आकांक्षाओंका पुनः अनुभव करता है, किंतु यहाँ उनकी पूर्ति भी होती जान पड़ती है। शताब्दियाँ इस प्रकार आनन्दमय क्रियाशीलतामें बीत जाती हैं और जीवकी आकांक्षाओंकी शक्ति क्षीण होती जाती है और फिर जीव अपना मनोमय शरीर भी छोड़ देता है। इस प्रकार उसका एक जन्म समाप्त हो जाता है। अब वह अपने असली स्वरूपमें है और केवल कारणशरीर धारण किये है। उसके अनुभव अब आदर्शमें और शक्तियोंमें परिणत हो चुके हैं। लेकिन पूर्णत्व प्राप्त करनेके लिए अभी उसे बहुत कुछ करना शेष है; इसलिए वह तीन नये शरीरोंके साथ फिर जन्म लेता है—मनोमय, वासनामय और अन्नमय शरीर।

'साधन-पथका पथिक' इस नियमका अपवाद होता है। वह शताब्दियोंके स्वर्गसुखसे वंचित रहकर अपने गुरुदेवके भूलोक संबंधी कार्यमें संलग्न रहता है। मानवजातिकी सेवा करनेके लिए अपने अर्जित स्वर्गसुखका वह परित्याग करता है। उसके गुरुदेव ही यह निर्णय करते हैं कि वह कब और कहाँ जन्म

लेगा और वह अपने ही पहले जन्मके वासनामय और मनोमय शरीरोंको लेकर केवल पार्थिव शरीर ही नया ग्रहण करता है।

आगेकी चार तालिकाओंमें चार जीवोंके पूर्वजन्मोंकी सूची दी गई है। इनके अध्ययनसे हम ऐसे जीवोंके पुनर्जन्म संबंधी नियमोंकी खोज कर सकते हैं, जो जीव न तो सिद्धपुरुष हैं और न साधन-पथके पथिक। ये चारों जीव तालिकामें दिखाये जन्मोंके अतिरिक्त पहले भी सैकड़ों जन्म धारण कर चुके हैं। किन्तु अध्ययनके लिये इन्हीं कुछ अर्वाचीन जन्मोंका निरीक्षण किया गया है। ये चारों जीव सुसंस्कृत श्रेणीके ही हैं और इनके जन्मसंबंधी नियमोंके अध्ययनसे हमें शेष दोनों विभागों—सरलमना तथा अविकसित—के संबंधमें भी कुछ ज्ञान हो जायगा।

इन तालिकाओंमें दिये हुए स्थान, समय, स्त्री-पुरुष, तथा जाति आदिकी सूचनाओंसे हम कुछ निष्कर्ष निकाल सकते हैं :—

(१) सुसंस्कृत मानवयोनि-प्राप्त जीवोंमें दो प्रकारके जीव पाये जाते हैं। एक तो जो मृत्युके उपरान्त १२०० वर्षके औसत अन्तरसे पुनर्जन्म धारण करते हैं और दूसरे जो औसतसे ७०० वर्षके अन्तरके बाद। 'क', 'ख', और 'घ' प्रथम श्रेणीके जीव हैं और 'ग' द्वितीय श्रेणीका। यह दो जन्मोंके बीचका लम्बा समय निचले स्वर्गलोक अथवा देवचनमें व्यतीत होता है

और जितनी ही प्रबल उच्च आकांक्षाएँ सांसारिक जीवनमें प्राणी-की होती हैं उतना ही दीर्घ समय निचले स्वर्ग लोकमें लगता है। (१) अविकसित और (२) सरलमना जीवोंके ६० वर्ष-का सांसारिक जीवन (१) स्वर्गीय जीवनके ५ से ५० वर्ष तक अथवा (२) दूसरे प्रकारके प्राणियोंके लिए दो या तीन सौ वर्ष तककी आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न करेंगे। यदि सांसारिक आयु बहुत थोड़ी हो और मृत्यु बचपन या युवावस्थामें ही हो जाय तो देवचनका स्वर्गीय जीवन भी बहुत थोड़े समयका होगा क्योंकि उस छोटे जीवनमें आध्यात्मिक शक्ति थोड़ी ही मात्रामें उत्पन्न हुई होगी।

अधिकतर सुसंस्कृत जीवोंके ६० वर्षकी सांसारिक आयु-के फलस्वरूप १००० से १२०० वर्ष तकका देवचन या स्वर्ग-लोक प्राप्त होता है। जितनी ही अधिक आध्यात्मिक शक्तिको सामर्थ्य और गुणोंमें परिवर्तित करना होगा उतनाही अधिक समय स्वर्गमें लगेगा। इन सुसंस्कृत जीवोंके समूहमें एक छोटा दल ऐसे जीवोंका है जो तालिका ३ के 'ग' जीवके समान आध्यात्मिक शक्ति तो उतनी ही उत्पन्न करते हैं जितनी और जीव करते हैं किंतु वे अपना स्वर्गीय जीवनका कार्य १२०० वर्षके वदले ७०० वर्षोंमें ही सम्पूर्ण कर लेते हैं।

२—प्रथम प्रकारके सुसंस्कृत जीव एक मूलजातिकी प्रत्येक उपजातिमें प्रायः दो बार तो अवश्य ही जन्म धारण

करते हैं और अधिकतर क्रमानुसार भी। पहली तालिकाका पात्र 'क' पहिले अटलांटियन जातिकी प्रथम उपजाति में जन्म

तालिका—१
जीव (क) के २० जन्म
औसत आयु पृथ्वीपर ६०$\frac{१}{२}$ वर्ष
दो जन्मों के बीच औसत अन्तर: १२०८$\frac{१}{६}$ वर्ष

जन्मका वर्ष		स्थान	जाति मूल—उप	स्त्री या पुरुष	आयु वर्ष	जन्मांतर- वर्षों में
ई. पू.	२३६५०	उत्तरी अमेरिका	४—१	पुरुष	५६	९२९
,,	२२६६५	,,	,,—२	,,	६४	११३५
,,	२१४६६	पॉसिडोनिस	,,—३	,,	८४	१८२६
,,	१९५५६	बैक्ट्रिया	,,—४	,,	७१	१२७६
,,	१८२०९	उत्तरी अफ्रिका	,,—५	,,	६९	१२६६
,,	१६८७४	पॉसिडोनिस	,,—६	स्त्री	५१	१०४१
,,	१५७८२	तार्तारी	,,—७	,,	७५	११६७
,,	१४५३०	केनडा	४—१	,,	५७	८१९
,,	१३६५४	पॉसिडोनिस	,,—२	पुरुष	५४	१५०५
,,	१२०९५	पेरू	,,—३	,,	८२	२२३८
,,	९७७५	चीन	,,—४	,,	१४	१४३
,,	९६१८	पॉसिडोनिस	,,—५	स्त्री	५४	१२६२
,,	८३०२	इट्रूरिया	,,—७	,,	४४	१२४१
,,	७०१७	मिश्र	५—१	पुरुष	६८	१३१४
,,	५६३५	भारत	,,—१	,,	४७	१५५१
,,	४०३७	मिश्र	,,—१	,,	७०	११४३
,,	२८२४	क्रीट द्वीप	,,—४	,,	३७	८३०
,,	१९०७	अरब	,,—२	,,	४५	१३३८
,,	५२४	यूनान (ग्रीस)	,,—४	,,	७०	२३०१
ई.केबाद	१८४७	इंग्लंड	,,—५	,,	८७	...

चित्र ३०

तालिका—२

जीव (ख) के २४ पिछले जन्म

औसत आयु पृथ्वी पर ५३½ वर्ष

दो जन्मों के बीच का अंतर वर्षों में—१०१७¾ वर्ष औसत।

जन्मका वर्ष	स्थान	जाति मूल—उप	स्त्री या पुरुष	आयु	जन्मांतर—वर्षों में
ई. पू. २३८७५	हवाई द्वीप	४—२	पुरुष	६०	८३७
,, २२९७८	मदागास्कर	,,—२	स्त्री	५७	७१२
,, २२२०८	मलाका	,,—७	,,	५६	६१२
,, २१५४०	दक्षिण भारत	,,—१	,,	३६	०
,, २१५०४	,,	,,—२	,,	४८	०
,, २१४५६		,,—२	,,	६४	१७७५
,, १९६१७	बैक्ट्रिया	,,—४	पुरुष	७१	१२४५
,, १८३०१	मोरक्को	,,—५	,,	६७	१००६
,, १७२२८	पॉसिडोनिस	,,—६	,,	९१	१४४७
,, १५६९०	तार्तारी	,,—७	,,	५८	१६२५
,, १४५०७	केनाडा	,,—१	,,	५६	७८०
,, १३६७१	पॉसिडोनिस	,,—२	स्त्री	३८	१५४३
,, १२०९०	पेरू	,,—३		८५	२३१९
,, ९६८६	चीन	,,—४	,,	१३	७०
,, ९६०३	पॉसिडोनिस	,,—५	,,	३९	१२३९
,, ८३२५	इट्रूरिया	,,—६	,,	६५	१५०२
,, ६७५८	तार्तारी	,,—७	,,	५२	१००७
,, ५६२९	भारत	५—१	,,	६२	१५५२
,, ४०१५	मिश्र	,,—१	पुरुष	७१	१२०८
,, २७३५	दक्षिणी अफ्रिका	,,—२	,,	४८	८०९
,, १८७९	ईरान	,,—३	,,	१७	३४१
,, १५२१	एशिया माइनर	,,—४	,,	३१	९९१
,, ४९९	यूनान (ग्रीस)	,,—४	,,	७६	२०२०
ई. केबाद १५९७	वेनिस (इटली)	,,—४	,,	२३	२७६
,, १८९६	अमेरिका सं. रा.	,,—५	,,	...	...

चित्र ३१

तालिका—३

जीव (ग) के पिछले ३० जन्म

औसत आयु पृथ्वी पर ७२३ वर्ष

दो जन्मों के बीच का अन्तर वर्षों में—औसत ७०६ वर्ष ।

जन्मका वर्ष	स्थान	जाति	स्त्री या पुरुष	आयु	जन्मांतर-वर्षों में
ई॰ पू॰ ३२६६२	उत्तरी अमेरिका	४—२	स्त्री	८४	८१९
,, २१७५९	भारत	,, ६	,,	१७	२७५
,, २१४६७	भारत	,,—२	पुरुष	८५	८०८
,, २०५७४	भारत	,,—३	,,	१०९	९११
,, १९५५४	चीन	,,—४	,,	६९	६००
,, १८८८५	मध्य एशिया	५—१	,,	७९	५९७
,, १८२०९	उत्तरी अफ्रिका	४—५	,,	७१	६७४
,, १७४६४	मध्य एशिया	५—१	,,	६०	५२८
,, १६८७६	पॉसिडोनिस	४—६	,,	८४	७९७
,, १५९९५	मध्य एशिया	५—१	स्त्री	५८	५३५
,, १५४०२	भारत	५—१	,,	७९	७७२
,, १४५५१	भारत	५—१	,,	६१	८०९
,, १३६५१	पॉसिडोनिस	४—२	,,	८२	६९२
,, १२८७७	भारत	५—१	पुरुष	८२	७०२
,, १२०९३	पेरू	४—३	,,	९०	८२१
,, ११९८२	भारत	५—१	,,	७१	६८२
,, १०४२९	भारत	५—१	,,	७३	६८४
,, ९६७२	पॉसिडोनिस	४—५	,,	८६	८११
,, ८७७५	भारत	५—१	,,	८३	८४०
,, ७८५२	भारत	,,—१	,,	७८	७४८
,, ६९८६	मिश्र	,,—१	स्त्री	७७	९४५
,, ५९६४	भारत	,,—१	,,	१७	३१२
,, ५६३५	भारत	,,—१	,,	४७	६१८

जन्मका वर्ष		स्थान	जाति	स्त्री या पुरुष	आयु	जन्मांतर-वर्षों में
ई. पू.	४९७०	भारत	५—१	स्त्री	६९	८६६
,,	४०३५	मिश्र	,, – १	,,	७५	९०१
,,	३०५९	भारत	,,—१	पुरुष	८१	७०८
,,	२१८०	भारत	,,—१	,,	५६	५९६
,,	१५२८	ईरान	,, — ३	,,	८७	८११
,,	६३०	भारत	,,—१	,,	७१	११८३
ई. सन्	६२४	भारत	,,—१	,,	७०	१२०१
,,	१८९५	भारत	,,—१	,,	..	...

चित्र ३२

लेता है और फिर क्रमसे प्रत्येक उपाजातिमें जन्म पाता है। छठीं उपजातिमें प्रवेश करते समय वह पुरुषसे स्त्री शरीर धारण करना आरंभ करता है। सातवीं उपजातिमें जन्म लेकर जीवन समाप्त करनेके बाद फिर प्रथम उपजातिमें जन्म लेता है और तत्पश्चात् अन्य उपजातियोंमें क्रमानुसार। दूसरी और पांचवीं उपजातिमें वह फिर स्त्री-पुरुष-वर्ग बदलता जाता है। जब दूसरी बार उपजातियोंमें जन्म लेता है तो सातवीं उपजातिको छोड़ जाता है। जब कोई उपजाति बिलकुल छूट जाती है तो समझना चाहिए कि उस उपजातिमें अर्जित होनेवाले गुण जीव और कहीं अर्जित कर चुका है। पात्र 'क' पहिले सातवीं उपजातिमें एकबार जन्म लेकर उसके गुणोंको ग्रहण कर चुका। इसी प्रकार समझना चाहिए कि

तालिका—४

जीव (घ) के पिछले १७ जन्म

पृथ्वी पर औसत आयु ५५½ वर्ष

दो जन्मों के बीच का अन्तर—औसत १२६४ वर्ष

जन्मका वर्ष	स्थान	जाति	स्त्री या पुरुष	आयु	जन्मांतर—वर्षों में
ई. पू. १९२४५	काल्डिया	४—६	पुरुष	७६	२०२२
,, १७१४७	मिश्र	,,—५	,,	७२	१७८७
,, १५२८८	पॉसिडोनिस	,,—३	,,	४४	४७८
,, १४७४६	एस्किमो	,,—१	स्त्री	५५	६५३
,, १४०३८	उत्तरी अमेरिका	,,—२	,,	६२	१०८७
,, १२०८९	पेरू	,,—३	,,	८५	१३६७
,, ९६३७	चीन	,,—४	,,	१२	२२
,, ९६०३	उत्तर अटलांटिस	,,—५	,,	३९	९९५
,, ८५६९	इट्रूरिया	,,—६	,,	५९	१०५३
,, ७४५७	जापान	,,—७	,,	६५	१५१३
,, ५८७९	मिश्र	५—१	पुरुष	७५	१७७२
,, ४०३२	भारत	,,—१	,,	४५	१८२९
,, २१५८	अरब	,,—२	,,	६८	१५१७
,, ५७३	ईरान	,,—३	,,	१२	४१
,, ५२०	यूनान	,,—४	,,	७१	१९५२
ई. सन् १५०३	जर्मनी	,,—५	,,	१९	३२८
,, १८५०	इंग्लैंड	,,—५	,,	८३	...

चित्र ३३

[क, ख, ग और घ इन चार जीवोंको 'आल्कियोनीके जन्मोंकी कथामें सीरियस, ओरायन, आल्कियोनी और एराटो नाम दिये गये हैं। सीरियस और अल्कियोनी तो 'साधन पथके पथिक' हो चुके हैं—सीरियस ईसाके पूर्व ५२४ वर्षमें यूनानवाले जन्ममें; और अल्कियोनी इसी जन्ममें सन् १९१० ई० में। फिर भी अभी एक प्रकारसे हालमें ही इस पथ पर आनेके कारण इनको भी सुसंस्कृत जीवोंकी तीसरी श्रेणीमें ही समझा जा सकता है।]

जब किसी उपजातिमें निरंतर दो बार जन्म लिया गया, तो उस उपजातिमें प्राप्य अनुभवोंकी जीवको विशेष आवश्यकता थी।

दूसरी उपश्रेणी 'ग' सरीखे जीवात्माओंकी है। इनके सम्बंधमें भी कोई नियम होना चाहिए। किंतु चित्र ३२ को देखकर किसी प्रकारका नियम निकाला नहीं जा सकता। कदाचित् इसी श्रेणीके अन्य जीवात्माओंकी जन्मतालिकाओंका निरीक्षण करनेपर किसी प्रकारका नियम निर्धारित किया जा सके।

३. स्त्री अथवा पुरुष शरीर धारण करनेके संबंधमें हम देखेंगे कि ये चारों पात्र एक दूसरेसे बहुत भिन्न हैं। नारी या पुरुषका जन्म कुछ विशेष गुणोंके समावेशके लिए होता है, जो स्त्री या पुरुष देहमें अधिक सरलतासे अर्जित किये जा सकते हैं। भिन्न-भिन्न जीवात्माओंकी गुणों की अर्जनकी शक्ति भिन्न-भिन्न होती है और आवश्यकताएँ भी प्रायः प्रत्येक जीवनके साथ बदलती रहती हैं; इसलिए कोई जीवात्मा कितनी बार स्त्री या पुरुष शरीर धारण करे, इसका कोई नियम नहीं है। साधारणतः निरंतर एक साथ सातसे अधिक जन्म स्त्री या पुरुष शरीरमें नहीं होते और तीन से कम जन्म व्यतीत किये बिना परिवर्तन भी नहीं होता। लेकिन इसके भी अपवाद हैं; जैसा कि पात्र 'क'की तालिका देखनेसे जान पड़ेगा कि जीव तीन बार पुरुष जन्म लेकर, दो बार स्त्री शरीर धारण करता है और फिर पुरुष शरीरमें लौट आता है। एक

जीवात्मा नौ बार निरंतर नारी शरीर धारण करते भी देखा गया है।

४. शरीरकी आयुके संबंधमें भी कोई नियम निकलता नहीं जान पड़ता। जन्म लेनेका समय स्वर्गीय जीवनकी समाप्ति पर निर्भर है। मृत्युका समय 'कर्मके अध्यक्ष'—वे देवता जो जीवके पुण्य-पापका लेखा-जोखा इस प्रकार निश्चित करते रहते हैं कि अधिकसे अधिक लाभ भविष्य के लिए हो सके—पहलेसे ही निश्चय कर रखते हैं। रोग अथवा आकस्मिक घटनासे जीवनका अंत उस समयसे पहले भी हो सकता है, यदि जीवात्माके विकासके लिए उन देवताओंको यही उपयोगी प्रतीत हो; और यदि लम्बा जीवन जीवात्माके लिए कुछ गुणोंकी प्राप्तिके लिए आवश्यक हो, तो जीवन काल बढ़ाया भी जा सकता है।

यद्यपि किसी जन्मकी प्रमुख घटनाएँ और उसका अन्त, कर्मके देवताओं द्वारा, जीवके कर्मानुसार, पहिलेही से निश्चित हो जाता है और इस प्रकार जीवके पूर्व जन्मोंके औरोंसे प्राप्य और दूसरोंको देय ऋणके चुकानेकी योजना रहती है; फिर भी, जीवके अपने प्रयत्नसे या दूसरोंके द्वारा, जिनके कर्मोंका प्रभाव उसपर पड़े, इस योजनामें कुछ फेरफार भी हो सकता है। उदाहरणके लिए जब दुर्घटना द्वारा मृत्यु होती है तो बहुधा ऐसीही योजना कर्मके देवताओं की रहती है; परन्तु कभी-कभी ऐसी योजना नहीं भी होती है, तब इस प्रकार पूर्वयोज-

नाओंमें बाधा पड़ती है। ऐसी स्थितिमें अगले जीवनके आरम्भमें इस बातका प्रबन्ध करना होता है कि जो विघ्न पूर्ववर्ती जीवनकी योजनामें पड़ चुका है, उसका सुधार हो जाय और अन्तमें जीवके विकासमें उस बाधाके पड़नेपर भी, किसी प्रकारका अन्तर न पड़े।

मनुष्यके जीवनमें आत्महत्याकी कोई योजना नहीं रहती; इसकी पूरी जिम्मेवारी स्वयं जीवपर पड़ती है, यद्यपि उसमें और लोग भी भागी हो सकते हैं। आत्महत्या भी कई प्रकारकी होती है; कभी तो किसी दुष्कर्मके परिणामसे बचनेके लिए आत्महत्या की जाती है, कभी पागलपनके कारण और कभी किसी उदार उद्देश्यसे भी आत्महत्या हो सकती है। आत्महत्याके कारण और उद्देश्यके अनुसारही उसका कर्मफल भी होगा।

अविकसित और सरलमना जीवोंके लिए पुनर्जन्मके नियममें इतना परिवर्तन होता है कि एक उपजातिमें कई वार जन्म लेकर तब दूसरी उपजातिमें जन्म लेते हैं। इसका कारण यही है कि वे बिना कई वार एकही उपजातिमें जन्म लिए उसके अनुभवोंको आत्मसात नहीं कर सकते! ऐसे जीवोंके दो जन्मोंके बीचका अन्तर कभी-कभी बहुत कम सालोंका होता है और कभी-कभी दो या तीन शताब्दीका भी हो सकता है। सुसंस्कृत वर्गके जीवोंके जीवन-विकासके अरबों वर्ष बीत चुके हैं। चौथे और पाँचवें प्रकारके अविकसित और सरलमना जीवोंका पिछड़ा रहना उनके किसी दोषके कारण नहीं है।

आत्माकी आयुकी दृष्टिसे वे अभी अल्पवयस्क ही हैं। सुसंस्कृत जीवका-सा उदार दृष्टिकोण और उसकी-सी विस्तृत सहानुभूति किसी दिन उन सभी जीवोंकी होगी जो आज अविकसित और सरलमना हैं। आत्माके अनन्त जीवनमें सभी जीवोंकी उन्नति होती है और उनमें प्रौढ़ता आती है।

पूर्व जन्मोंकी इन तालिकाओंको देखने और जीवोंके जन्म-लेनेके समय, जाति और स्थानका निरीक्षण करनेपर यह प्रश्न उठ सकता है कि दिव्यद्रष्टा शोधकको इनकी सत्यताके संबंधमें पूर्ण निश्चय किस प्रकार हो सकता है। वह कैसे निश्चय करता है कि पॉसिडोनिसमें जन्म लेनेवाला पुरुष (पात्र 'घ') और अगले जन्मकी एस्किमो नारी एकही जीव हैं ? माना कि ईश्वर-का स्मृतिपट है, फिर भी ये बातें जानी कैसे जाती हैं ?

प्रश्न स्वाभाविक है और उत्तरसे कदाचित् स्पष्ट हो जाय कि गुप्तविद्याविद शोधक और आधुनिक वैज्ञानिककी खोजकी विधिमें कोई विशेष अन्तर नहीं है। किसी जीवका जन्म पृथ्वीके किस भागमें होता है, इसका निश्चय करना कोई कठिन बात नहीं है; शोधक बच्चेका जन्म लेना देखेगा, फिर आसपास-की दुनियाका निरीक्षण करेगा, सागर, पहाड़, नदी और झील-पर दृष्टि डालेगा; फिर अपने भूगोलज्ञानसे स्थानका पता लगायेगा। यदि बहुत अतीत युगकी बात है और भूमण्डलकी रूपरेखा बदल चुकी है तो उसे ईश्वरीय स्मृतिपटसे संपर्क करके

उस स्थानकी पूर्व अवस्थाका चित्र देखना होगा और आगे उसके परिवर्तित रूपको जानना होगा; तब उसे पता लग जायगा कि भूगोलवेत्ता आज उस स्थानको क्या नाम देते हैं।

जाति और उपजाति जाननेके लिए नृवंश विद्या (एथ्नालोजी) का पूर्व अभ्यास आवश्यक है। जिस किसीने पर्याप्त परिभ्रमण किया है उसके लिए चीनी और जापानीमें अन्तर देख पाना कठिन नहीं है; वह फ्रेञ्च केल्ट और इटैलिअन केल्ट, तथा अंगरेज और नार्वेजिअनमें अन्तर जान सकता है। उसी प्रकार जातियोंके विशेषगुण और स्वभाव, उपजातियोंके सूक्ष्म अदृश्य शरीरोंके तत्वोंमें परिवर्तन आदिके द्वारा, शोधक जो जानना चाहता है जान सकता है।

समयका निश्चित निर्णय करना तनिक अधिक कठिन है। ईश्वरके स्मृतिपटका अध्ययन करते समय शोधक पृथ्वीपर होनेवाली घटनाओंका क्रम जिस गतिसे चाहे—शीघ्रतासे अथवा शनैः शनैः, देख सकता है। चाहे तो अतीतकालके किसी दिवस विशेषकी घटनाओंका क्षणप्रतिक्षण निरीक्षण कर सकता है। नहीं तो कुछ क्षणोंमें शीघ्रतासे ऋतुओंका परिवर्तन देखते हुए समयकी नाप कर सकता है। यदि उसे ठीक-ठीक समयकी नाप समझना है तो ऋतुओं को गिनकर वह वर्षोंकी गणना कर सकता है।

ऐतिहासिक कालके भीतर यदि वह, मान लें, मिश्रदेशके किसी दृश्यका निरीक्षण कर रहा है और उसका सन्-संवत्

जानना चाहता है, तो उसे उस कालके किसी दर्बारी दृश्यको देखना होगा, शासकके नामको किसीको बोलते हुए सुनना होगा और फिर किसी विश्वकोष (एनूसायक्लोपीडिया)की सहायतासे उस शासकका शासनकाल जानना होगा। यूनान (ग्रीस) में उसे किसीको पत्र लिखते देखकर या किसी तत्कालीन युद्धको देखकर और उसके तथा शोधवाली घटनाके बीचके वर्षोंको गिन कर समयका पता लगाना होगा। रोममें भी इसी तरह सन्-संवत्का पता लग सकता है—उस समयके राज्यपरिषदके सदस्योंके नाम देखकर इतिहाससे उसके समयका पता लगाया जा सकता है। कभी किसी विशेष घटना, जैसे अटलाण्टिसके (९५६४ व' ईसासे पहिले) जलमग्न होनेके समयसे वर्ष गिनकर समयका पता लगाना होगा। लाखों वर्षकी गणना कर सकनेके लिए शोधकको ज्योतिषका ज्ञान होना चाहिए, ताकि वह ध्रुवतारे और पृथ्वीके मेरुदण्डकी (पारस्परिक) सापेक्षिक स्थितिसे समय स्थिर कर सके। जैसे आधुनिक वैज्ञानिक-शोधकी सत्यता, शोधककी निरीक्षणमें सतर्कता और उसके विस्तृत ज्ञान तथा अपने शोधके परिणामके क्रमबद्ध वर्णन कर सकनेकी योग्यता पर निर्भर है, ठीक वही बात गुप्तविद्याके शोधकके संबंधमें भी लागू है।

जीवको विविध जन्मोंमें पहचान लेनेमें सचेत शोधक कभी भूल न करेगा। यह सत्य है कि पात्रका स्थूल शरीर

हर जन्ममें नया होता है, पर उस जीवका कारण शरीर तो बदलता नहीं। जब एक बार शोधक उस अमर शरीरको पहचान लेता है तो फिर स्थूल शरीरमें कुछ भी परिवर्तन होता रहे, वह जीवको सदैव पहचान सकता है। पहचाननेका निश्चित साधन तो कारण-शरीर है, और यह वही रहेगा चाहे जीवका स्थूल शरीर बच्चेका हो या मृतप्राय वृद्धका।

दो और मानचित्रों पर विचार करना बाकी है। तीन जीव क, ख, ग, जिनके पूर्वजन्मोंपर हमने विचार किया है स्नेहसूत्रोंसे बद्ध हैं और ये स्नेह-बन्धन अनेक जन्मोंमें दृढ़ हुए हैं। प्रत्येक जीव अपने अलग-अलग अमरजीवनके अनुसार विकसित होता है, परंतु पूर्णत्वकी प्राप्तिके पथपर अकेले अग्रसर नहीं होता—अपने स्नेही जीवोंके साथ-साथ चलता है। सच्चा प्रेम आत्माओंके बीच होता है, केवल पार्थिवशरीरका नहीं। स्त्री या पुरुष किसी भी शरीरमें जीव हों, उनका पारस्परिक प्रेम तो प्रकट होगा ही। देहके नाते तो गौण हैं—बहुमुखी प्रेम स्नेह और सेवाके रूपमें प्रकट होगा ही, फिर उसके सांसारिक रूपका चाहे कोई भी साधन कर्मके देवताओंने निश्चित किया हो।

इन तीनों पात्रों 'क', 'ख' और 'ग' में से 'क' और 'ख' तो १२०० वर्षके देवचन (स्वर्गभोग) वाली श्रेणीके हैं और 'ग' केवल ७०० वर्षके देवचनका। स्पष्ट ही है कि 'क' और 'ख', 'ग' के सभी जन्मोंमें उसके साथी नहीं रह

सकते, जब तक कि वे ऐसी अवस्थामेंही न मरें जिसके फलस्वरूप उन्हें ७०० वर्षका ही स्वर्ग प्राप्त हो। मानचित्र (१) में इनके जन्मोंके संबंध दिखाये गये हैं। जितने समयमें 'ग' के ३१ जन्म हुए, उसी समय में 'क' के केवल १९ और 'ख' के केवल २३ जन्म हुए। इस तालिकाके पहिले जन्ममें 'क' और 'ग'का मिलन पति-पत्नीके रूपमें होता है, पर इस बार 'क'की 'ख'से भेंट नहीं होती। जब 'क' दूसरी बार जन्म लेता है तो 'ख'का पति होता है और 'ग'-से साले-बहनोईका संबंध होता है। पर इसी बीचमें 'ख'-के ऐसे तीन जन्म हुए और 'ग'का एक, जिनमें वे 'क'से मिले ही नहीं। इस मानचित्रके अध्ययनसे हमें पता लगेगा कि 'ग' अपने ३१ जन्मोंमें 'क'से १२ बार और 'क' और 'ख'से एक साथ केवल ८ बार मिलता है। 'क' और 'ग'का पारस्परिक संबंध अधिक घनिष्ट है जैसा मानचित्रसे स्पष्ट हो जाता है। शारीरिक संबंध कुछ भी हो, चाहे पति-पत्नी हों या भाई-बहन, या फिर ऐसे प्रेमी हों जिनका भाग्यके फेरसे विवाह नहीं हो पाया, उनकी आत्मा एक दूसरेको पहचानकर आकृष्ट अवश्य होती है। एक जन्म 'ख' स्त्री होकर एक लड़की 'क'को गोद लेती है, यह ऋण एक आगेके जन्ममें पिता 'क'के 'ख'को दत्तक पुत्र बनाने से पटता है।

ख	क	क	ग
——	——	पति	पत्नी
——			——
पत्नी	पति	बहनोई	साला
			——
प्रपितामह	प्रपौत्र	भाई	भाई
			——
——	——	युग्म भाई	युग्म भाई
——	——	पत्नी	पति
——	——	——	——
			——
पुत्र	माता	——	——
माता	पुत्र	पति	पत्नी
			——
मित्र	मित्र	भाई	भाई
			——
——	——	——	——
मित्र	मित्र	पुत्री	पिता
			——
माता	दत्तक पुत्री	——	——
——	——	पिता	पुत्री
पत्नी	पति	युग्म भाई	युग्म भगिनी
			——
मित्र	मित्र	प्रेमी	प्रेमी
——	——	——	——
दत्तक पुत्र	पिता	——	——
——			——
पुत्र	पिता	——	——
——			——
मित्र	मित्र	मित्र	मित्र

चित्र ३४

चित्र ३९ में 'च' और 'छ' १४ जन्मोंमें मिलते हैं। हम देख सकते हैं कि किस प्रकार उनका प्रेम एक दूसरेके प्रति विभिन्न रूपोंमें प्रकट होता है। 'च' जब पुरुषसे बदलकर दो बार स्त्री शरीर धारण करता है तब उसका प्रेमी 'छ' एक बार पुत्र और एक वार पतिके रूपमें मिलता है। जब 'छ' वर्ग (लिंग) बदलता है तो 'च'से पुरुष रूपमें उसकी भेंट होती है और दोनोमें अपूर्व मैत्री और स्नेह हो जाता है। अगले जन्ममें 'च' एक मंदिरमें पुजारी होता है और एक अनाथ लड़की मंदिरमें आती है और थोड़े ही समयमें पुजारी उसका संरक्षक और पथप्रदर्शक बन जाता है। फिर अगले जन्ममें वे पति-पत्नी होते हैं। और इसके बाद दो जन्मोंमें वे प्रेमीके रूपमें मिलते हैं, किंतु उनका प्रेम फलीभूत नहीं होता—उसमें विघ्न पड़ते हैं। फिर एक जन्ममें 'छ'-की भेंट अपने मित्रसे नहीं होती, लेकिन उसके बाद फिर रोमनगरमें वे पति-पत्नी होते हैं। इस वर्तमान जन्ममें अभी वे मिले नहीं हैं। यद्यपि कर्मके देवताओंने इन दोनोंको इस बार पृथक् रखा है, फिर भी इन दो जीवोंका स्नेह-सम्बंध दृढ़ है और वे अवश्य पति-पत्नी, पिता-पुत्र या मित्र-मित्रके रूपमें भविष्यमें मिलेंगे। वे फिर एक दूसरेसे स्नेह करेंगे और उनका बहुमुखी प्रेम प्रकट होगा—जैसी कर्मके देवताओंकी इच्छा हो, उसी रूपमें।

पुनर्जन्मके नियम

पात्र 'च' और 'छ'

जन्मका स्थान	च	छ
अटलाण्टिस	सौतेला भाई	सौतेली बहन
भारत	पति	पत्नी
स्कैण्डीनेविआ	पति	पत्नी
पेरू	पिता	पुत्री
—	माता	पुत्र
ईरान	पत्नी	पति
उत्तरी अमेरिका	मित्र	मित्र
असीरिआ	पुजारी	मंदिरकी अनाथ लड़की
भारत	पति	पत्नी
मिश्र	प्रेमी	प्रेमी
अरब	प्रेमी	प्रेमी
यूनानका उपनिवेश	—	नारी
रोम	पति	पत्नी
आधुनिक काल	पुरुष	नारी
	(साधन पथका पथिक, दोनों मिले नहीं)	

चित्र ३९

"प्रथमांक—पृथ्वीका धरातल, अत्यंत मलिन और शोकमग्न ; उसके बदलते हुए दृश्य अत्यंत खेदजनक हैं। किंतु, धैर्य धरो। हमारा

नाटकसूत्रधार सब जानता है और कदाचित् पाँचवें अंकमें स्पष्ट करेगा कि समस्त नाटकका प्रयोजन क्या है।"

कवि टेनीसनकी दृढ़ ईसाई श्रद्धालुताके बावजूद भी उसे यह जीवन-नाटक अत्यंत ऊबड़-खाबड़ जान पड़ा। बिना पुनर्जन्मके सिद्धान्तके जीवन सचमुच एक समझमें न आनेवाली पहेली हो जाता है। विकासका क्रम अत्यंत निर्मम और कठोर है; उसे केवल वर्गके निर्माणकी चिंता है; व्यक्तिके विनाशके प्रति वह निर्द्वंद्व है। पर एक बार यह स्वीकार कर लो कि जीवन अमर और विकासशील है; फिर तो प्रत्येक व्यक्तिका भविष्य उज्ज्वल हो जाता है। पुनर्जन्मके प्रकाशमें मृत्युकी कटुता नष्ट हो जाती है और श्मशानकी विजय क्षणिक; क्योंकि मानव अपने स्नेहियोंके हाथमें हाथ दिये, वियोगके भयसे मुक्त, विकास-पथपर पूर्णत्वकी ओर अग्रसर हो रहा है। मरणशीलता, मृत्यु भी जीवका एक नाटकीय दृश्य है; जब यह नाटक समाप्त हो जाता है, और हम सब-जीवन जी चुकते हैं और सब-मृत्युएँ मर चुकते हैं, तब जीव अपना सिद्धपुरुषका कार्य आरम्भ करता है; और पृथ्वी-पर ईश्वरकी छाया बनकर अवतीर्ण होता है। भगवानका संकल्प मूर्तरूप धारणकर लेता है। चाहे हम बर्बर हों या सुसंस्कृत, हम सबके भविष्यमें यह सौभाग्य सुनिश्चित है—इस गौरवके दर्शन हम सबको होंगे ही।

कर्म के नियम

चतुर्थ अध्याय

जिसने दासत्वमें दिन व्यतीत किये हैं,
वह राजकुमार होकर जन्म ले सकता है—
अपनी नम्रता और अपने पुण्यके फल-स्वरूप ;
जिसने राजा होकर शासनका कार्य सम्हाला है,
वह चिथड़े पहनकर घूम सकता है—
अपने कर्म और भूलोंके कारण ॥

धीरे-धीरे जैसे मनुष्यका ज्ञान विस्तृत होता जाता है, उसे संसार, जहाँ वह अपना जीवन व्यतीत करता है, क्रमबद्ध और नियमानुकूल जान पड़ने लगता है। प्रत्येक प्रकृति का नियम, जैसे-जैसे उसका पता चलता जाता है, हमारी संकल्प-शक्तिको स्वतंत्र करता जाता है, यद्यपि ऊपरसे वह हमारी कार्य-शक्ति को सीमित बनाता-सा जान पड़े। कर्म अंतर्जगत्‌की अनेक शक्तियोंके परस्पर क्रियाओंके फलस्वरूप होता है, इसलिए अंतर्जगत्‌की नियमितता और क्रमबद्धताको ठीक-ठीक समझना ही मनुष्यकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। जिस महान कर्म-नियमका वर्णन थिऑसोफी करती है उसके द्वारा मनुष्य अपने अस्तित्वके आंतरिक ताने-बानेको समझने लगता है और इस प्रकार वह

थोड़ा बहुत अपनी परिस्थितियोंपर अधिकार पाना सीखता है—सर्वथा उनका गुलाम नहीं रह जाता।

विज्ञान की इस धारणासे हम परिचित हैं कि सारी सृष्टि शक्तिका प्रकट रूप है। विद्युत्कण (इलेक्ट्रॉन) शक्तिका भंडार है। उससे कहीं अधिक शक्तिका भंडार है एक तारा। इस शक्तिका रूप बराबर बदला करता है; गतिका रूप बदलकर प्रकाश, ताप, या विद्युत् हो जाता है; भारी तत्व हलके तत्वोंमें बदल जाते हैं—इस प्रकारके अनेक परिवर्तन होते रहते हैं। मानव स्वयं एक शक्तिका भंडार है; वह भोजनरूपमें शक्ति ग्रहण करता है और उसे अपने शरीरके अंगोंकी गतिमें बदलता है। जब मनुष्यकी शक्तिका उपयोग किसीकी सहायताके लिए होता है तो हम उस उपयोगको अच्छा अथवा 'पुण्य' कहते हैं; जब उसका उपयोग किसीको कष्ट देनेके लिए होता है तो उस उपयोगको हम 'बुरा' या 'पाप' कहते हैं। मानव बराबर एक परिवर्तनकारी यन्त्रका काम करता रहता है; सृष्टिकी शक्ति उसमें प्रवेश करती है और वह उसे 'सेवा' या 'परपीड़ा' में बदलता रहता है।

कर्मका नियम मानवके शक्तिके परिवर्तनका कार्य-कारण-नियम है। विज्ञानकी तरह यह नियम दृश्य जगत् और उसकी शक्तियोंको ही ध्यानमें नहीं रखता, वरन् अदृश्य जगत् और उसकी शक्तियोंका भी लेखा रखता है, क्योंकि यह

अदृश्य जगत् ही मनुष्यका मुख्य कार्य-क्षेत्र है। जैसे पलक डुलाने-मात्रसे मनुष्य समस्त विश्वकी शक्तियोंको आन्दोलित कर देता है और उसका प्रभाव उनके संतुलनपर पड़ता है ठीक उसी तरह मनुष्यके प्रत्येक विचार, उसकी प्रत्येक भावनासे विश्वमें परिवर्तन होता है और स्वयं उसमें भी परिवर्तन हो जाता है।

कर्म-नियमको समझनेके प्रयत्नमें सबसे पहिला सिद्धान्त जो समझ लेनेका है वह यह है कि हम शक्ति और उसके परिणामोंको अध्ययन कर रहे हैं। यह शक्ति या तो स्थूल जगतके संचालनकी है या वासना जगतकी भावनाकी, या मानसिक लोकके विचारोंकी। तीनों प्रकारकी शक्तियोंका उपयोग हम करते हैं—पहिले प्रकारकी शक्तिका उपयोग स्थूलशरीरके स्थूल कार्यमें होता है, दूसरे प्रकारकी शक्तिका उपयोग होता है वासना-शरीरकी भावनाओं द्वारा, और तीसरे प्रकारकी शक्तिका उपयोग मानसिक शरीर और कारण शरीरके मूर्त और अमूर्त विचारों द्वारा। हमारी आकांक्षाएँ, हमारे स्वप्न, हमारी योजनाएँ, हमारे विचार, हमारी भावनाएँ और हमारे कार्य—ये सभी तीनों लोक शक्तियोंको आन्दोलित करते हैं; और इन शक्तियोंका उपयोग करके या तो हम सहायता करते हैं या बाधा डालते हैं।

किसी लोककी कुछ भी शक्ति जिसका हम उपयोग

करते हैं ईश्वरकी ही शक्ति है—हम तो केवल उसका परि-वर्तन मात्र करते हैं। इस ईश्वरीय शक्तिका उपयोग और परिवर्तन करते हुए भगवानकी योजना—विधिविधानके हम सहायक बनें, ऐसी ईश्वरकी इच्छा है। जब हम उस योजनाकी सहायता करते हैं, तो हमारा कर्म 'पुण्य' है, और यदि हम उसमें बाधा डालते हैं, तो हमारा कर्म 'पाप' है। और शक्तिका उपयोग तो हम प्रति क्षण किया करते हैं, इस-लिए हम बराबर प्रतिक्षण, उस ईश्वरीय योजनाकी या तो सहायता करते रहते हैं या उसमें बाधा डालते रहते हैं।

मनुष्य एक अकेला व्यक्ति-मात्र तो है नहीं; वह तो करोड़ों मनुष्योंकी मानवजातिमेंसे एक है, इसलिए उसका प्रत्येक विचार, उसकी प्रत्येक भावना, उसका प्रत्येक कार्य उसके साथके अन्य मनुष्योंपर प्रभाव डालता है—जो जितने ही उसके निकट हैं उनपर उतनाही अधिक प्रभाव पड़ता है। शक्तिके इस उपयोगका, जिससे समष्टिको हानि या लाभ पहुँचता है—इस समष्टिका ही एक अंश मनुष्य स्वयं है, कुछ प्रभाव परिणाम स्वरूप उपयोग करनेवालेपर पड़ता है। नीचेके मानचित्र ३६ में कर्म और उसके परिणामको संक्षेपमें दिखानेका प्रयत्न किया गया है।

दूसरोंको कष्टदायक प्रत्येक कार्य विश्वमें कुछ निश्चित शक्ति-का परिचालन है जो किसीको कष्ट पहुँचाती है, किंतु चूँकि इससे

कर्म और प्रतिक्रिया				
उच्च मन	उच्च- -आकांक्षायें	आदर्श	☆	१२५
निम्न मन	गुण ग्राहकता दोष दृष्टि	उत्साह चिन्ता	○ ●	२५ २५
भुवर्लोक	सहानुभूति विरोध भाव	आनन्द दुःख	△ ▲	५ ५
स्थूल लोक	उपकारी कार्य कष्ट दायक कार्य	सुख पीड़ा	□ ■	१ १

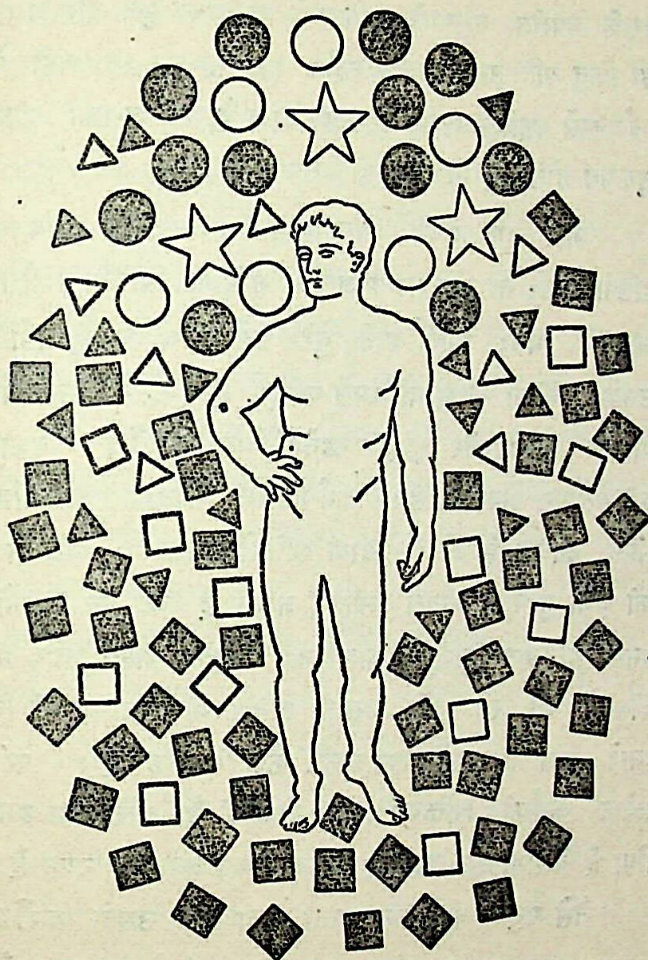
चित्र ३६

कष्ट देनेवालेके कारण विश्वका संतुलन गड़बड़ हो गया है अब उसी कष्ट देनेंवालेके द्वारा यह संतुलन फिर ठीक होना चाहिए। इस कार्य का फल स्वयं उसके लिए क्लेश है जो कदाचित कष्ट पानेवालेके द्वारा उसे पहुँचेगा और इस प्रकार यह संतुलन ठीक होगा। इसी प्रकार उपकारी कार्यका भी फल है। संतुलनके लिए उसकी प्रति-क्रिया कर्म करनेवालेके लिए सुखकी परिस्थिति और साधन होंगे।

इस नियम-बद्ध जगत्में प्रत्येक प्रकारकी शक्तिका प्रतिफल उसी स्तर पर होता है। एक मनुष्य भिक्षुकको सहानुभूति और दयाके भावसे भिक्षा देता है और दूसरा उसे किसी तरह टाल देनेके लिए। दोनों सहायताका कार्य करते हैं और फलस्वरूप दोनोंको आराम मिलेगा, किंतु पहले प्रकारके दाता को भुवर्लोकमें दया और सहानुभूतिका कर्म-फल आनंदकी भावना होगा जैसा कि दूसरे को नहीं होगा। यदि मेरे पास देनेको स्नेह और सहानुभूतिके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, तो फलस्वरूप मुझे भावनाका आनंद तो मिलेगा, किंतु शारीरिक सुख कुछ भी न मिलेगा।

इस कठिन विषयको स्पष्ट करनेके लिए चित्र ३६ में कुछ चिह्न शक्तिके प्रकार-सूचक बनाये गये हैं। ये चिह्न समचतुष्कोण, त्रिभुज, गोलाकार और तारा हैं। ऊँचे मानसिक लोकमें, जहाँ जीव अपने कारणशरीरमें रहता है, पाप और अशुभका अस्तित्व ही नहीं है। आत्माकी उच्च आकांक्षाओंके विपरीतका कोई दोष रहता ही नहीं। इस-लिए काले तारे द्वारा ंगित करनेको कुछ है ही नहीं। दुष्ट मनुष्य, दुष्ट आत्मा नहीं होता—वह तो केवल एक अविकसित जीवका सांसारिक शरीरमें प्रतिनिधि मात्र है। उसकी शक्तियाँ इतनी बलवती नहीं हैं कि अपनी वासना और स्थूल देहपर पूर्णरूपसे शासन कर सकें।

इस जन्ममें प्रवेश करते समय, हममेंसे प्रत्येकके पीछे अनेक जन्मोंका एक भूतकाल रहता है। इस जन्ममें फिर आकर हम अपने साथ बहुत-सा भला और बुरा पू ार्जित कर्म लाते हैं। यह कर्म जैसा ऊपर बता चुके हैं, शक्ति है। आगे चित्रमें हमारी कल्पनामें यह खिंच जाय इस-लिए व्यक्तिको भली और बुरी शक्तियों द्वारा—जो कि स्वयं भूतकालमें उसीकी संचित शक्तियाँ हैं, घिरा हुआ दिखाया गया है। काले चिन्ह कष्ट, दु:ख, चिंताके द्योतक हैं और श्वेत चिन्ह सुख, आनंद, उत्साह और ऊँची आकांक्षाओंके द्योतक हैं। चित्र ३७ को देखकर शायद हमारा ध्यान इस ओर जायगा कि कष्ट, दु:ख और चिंता-सूचक चिन्होंका बाहुल्य है और आदर्शके केवल तीन चिह्न हैं। किंतु हमें यह न भूलना चाहिए कि प्रत्येक लोककी शक्तियोंका प्रभाव मनुष्यके भाग्यके निर्माणमें एक समान नहीं होता। भौतिक जगत्की शक्तिका प्रभाव शारीरिक सुखके उत्पन्न करनेमें मानसिक जगत्के आदर्श निर्माण करनेकी शक्तिके प्रभावके शतांशसे भी कम होता है। यदि भौतिक शक्तिके का को हम १ की ंख्या दें तो कामलोककी उतनीही शक्तिके कार्यकी संख्या ५ होगी, निम्न मनोलोककी २५ और ऊँचे मनोलोककी आदर्श बनानेवाली शक्तिकी संख्या १२५ होगी। अनेक क्लेश, दु:ख और चिंताओंके होते हुए भी, यदि मनुष्यके सम्मुख कुछ



आदर्श भी हों, तो वह अपने जीवनको सफल बना सकता है। इसके विपरीत मनुष्यके कर्मफल में शारीरिक सुख और आराम हो किंतु यदि उसके हृदयमें स्फूर्ति (Inspiration) नहीं है, पूर्वजन्मसे स्फूर्तिके अंकुर वह नहीं लाया है, तो उसका जीवन सुखमय होते हुए भी व्यर्थ ही हो जायगा।

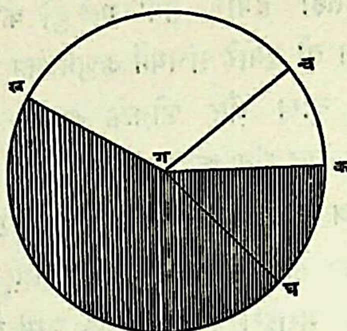
यदि हम अपने आसपासके नर-नारियोंके जीवनपर दृष्टिपात करें तो यह कहना अत्युक्ति न होगी कि अधिकांशके जीवनमें 'भले' कर्मके बदले 'बुरे' कर्म ही अधिक हैं, क्योंकि उनका जीवन नीरस परिश्रमसे परिपूर्ण है—उसमें प्रसन्नतासे परिश्रम करने और प्रफुल्लित रहनेके चिह्न नहीं हैं। विकास की वर्तमान अवस्थामें हमारे कर्म-भंडारमें कष्टदायी शक्तियोंका संग्रह अधिक है और सुखदायी शक्तियोंका कम। यह पाप-की जमा पुण्यकी जमासे इसीलिए अधिक है कि पूर्व जन्मोंमें हमने परिष्कृत बुद्धिसे काम नहीं किया, बल्कि स्वार्थ भरे जीवनमें रत रहे और इसकी तनिक भी चिंता न की कि हमारे द्वारा किसको किस प्रकार कष्ट मिल रहा है। परंतु प्रत्येक कर्मकी शक्तिका क्षय होना ही है और जैसा हमने बोया है वैसाही हम काटेंगे। यही सृष्टिका अबाधित नियम है।

जैसे मनुष्य कर्म भोग करता जाता है, उसके कर्मोंकी व्यवस्था इस प्रकार ठीक कर दी जाती है कि शुभ और अशुभ कर्मोंका परिणाम अंतमें थोड़ा बहुत जीवके हितहीमें हो।

यदि जन्म लेतेही हमारे सभी भले-बुरे कर्मोंका प्रवाह एक साथ होने लगता तो हमारे संचयमें अशुभ कर्म होनेके कारण हमारा जीवन दुःख और शोकके बोझसे इतना भारी हो जाता कि हम जीवन संघर्षको सहन न कर सकते और न विकास पथपर अग्रसरही हो सकते। इसलिए हमें सफलता-के साथ संघर्ष करनेके योग्य बनानेके लिए और हमारे शुभ कर्मोंका भंडार भरापूरा करनेके लिए, जन्म लेते समय जीवके प्रारब्ध (इस जन्ममें भोगनेके) कर्म की ऐसी व्यवस्था कर दी जाती है, कि अंतमें हमारा शुभका खाता कुछ और बढ़ जाय।

यह व्यवस्था कर्मके देवताओं द्वारा की जाती है। ये दयालु देवता ईश्वरकी योजनामें कर्मके नियामक और निर्णायक कार्य करते हैं। न वे किसीको पुरस्कृत करते हैं, न दंडित; वे तो केवल मनुष्यकी अपनी संचालित की हुई शक्तियोंकी ऐसी व्यवस्था कर देते हैं कि कर्मके फलस्वरूप जीव विकास-पथपर एक पग आगे बढ़ सके। आगेके मानचित्रों द्वारा हम इस व्यवस्थाको स्पष्ट करनेकी चेष्टा करेंगे।

आगेके चित्र ३८ में एक वृत्त है जो मनुष्यके समस्त संचित कर्मका प्रतीक है। वृत्तके दो खंड हैं—एक सादा और दूसरा काला। सादा खंड शुभ कर्मोंका द्योतक और काला खंड दुष्कर्मों का। मान लें कि मनुष्यका समस्त-कर्म सौ इकाइयों का है और उसमें भले-बुरे का अनुपात २:३



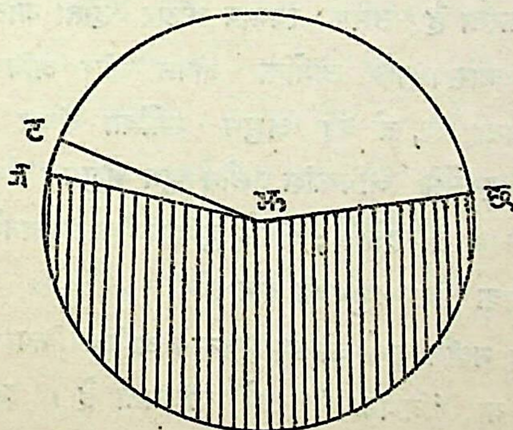
चित्र ३८

का है चित्र ३८ वृत्त खंड क च ख ग क तो ४० इकाई शुभ कर्म को चित्रित करता है और शेष क घ ख ग क वृत्त-खंड ६० इकाई अशुभ कर्म को। भारतीय दर्शनमें इस समस्त पूर्व कर्म को 'संचित कर्म' कहते हैं।

इस समूहमेंसे कर्मके देवता कुछ अंश जीवके नये जन्मके लिए चुन लेते हैं। मान लें कि इस जन्ममें संचितका चतुर्थांश उन्होंने कर्म-भोगके लिए निश्चित किया। चित्रमें यह चतुर्थांश वृत्त-खंड च ग घ क च है। इसमें च ग क तो शुभ कर्म है और क ग घ अशुभ, जिनकी मात्रा क्रमसे १०.७ और १४.३ इकाई है। इस प्रकार शुभ और अशुभ कर्मों का अनुपात इस जन्मके भोग्य कर्ममें ३:४ का होगा—संचित कर्मके २:३ का नहीं—जीवको शुभ कर्मका कुछ अधिक अंश और अशुभ कर्मका कुछ कम

अंश भोगने को दिया जायगा। इस जन्मके लिए भोग्य कर्मों के समूह को 'प्रारब्ध कर्म' कहते हैं। यही मुसलमानों की 'किस्मत' है, जो अल्लाह सबके गलेमें पैदाइशके वक्त लटका देता है।

अगले चित्र ३९ में हमने प्रारब्ध कर्मका प्रतीक बनाया है। सादा अंश छ ट ज झ छ शुभ कर्मों का और काला अंश छ झ ज छ अशुभ कर्मोंका द्योतक है। ऊपर कह चुके हैं कि इस जन्मके लिए संचितके अनुपातसे अधिक अनुपातमें शुभ कर्म ले लिये गये हैं। कुलके अनुपातके अनुसार छ झ ट छ शुभ कर्म होना चाहिए था, किंतु उससे अधिक ट झ ज ट और ले लिया गया। उतना ही अशुभ कर्म कम लिया गया।

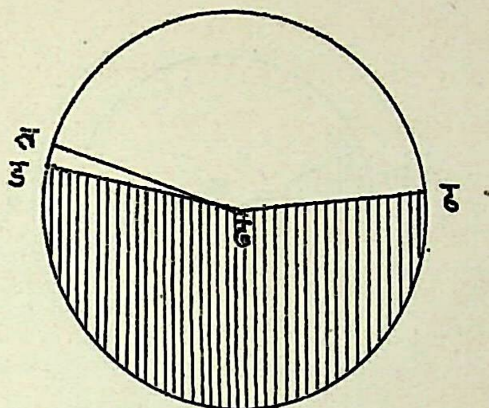


चित्र ३९

कर्म एक प्रकारकी शक्ति है; शक्ति कार्य करनेमें व्यय

होती है। इन कार्यों की प्रतिक्रिया होती है जैसे 'कर्म और प्रतिक्रिया' वाले चित्रमें दिखाया जा चुका है। जीवन व्यतीत होनेके साथ-साथ प्रारब्ध कर्म क्षीण होता जाता है, पर साथ ही प्रतिक्रियाओंके फलस्वरूप नये कर्मका संचय होता रहता है। यह किस प्रकारका कर्म संचित होता रहता है यह जीवकी बुद्धिमानीपर निर्भर है। यदि कष्टोंसे वह सहनशीलता और सहानुभूतिके पाठ सीख लेता है, यदि दुःख और चिंतासे वह अपने अपकारोंका प्रतिकार करनेके लिये उत्साहित और अनुप्राणित होता है, यदि वह समझदारीके साथ अपने कर्म ऋणका शोधन करता है, तो जो नये कर्म उसके होंगे, अशुभ न होकर शुभ होंगे। किंतु यदि कर्म ऋण शोधनमें वह क्रोध प्रदर्शित करता है, उसका स्वभाव कठोर होता जाता है, और वह अपने आसपासके लोगोंका जीवन और अधिक कष्टमय बनाता जाता है, तो वह अशुभ कर्मोंका संचय करता है। वास्तवमें हममेंसे अधिकांश लोग शुभ अशुभ दोनों प्रकारके कर्म संचय करते रहते हैं; केवल बुद्धिमानोंके जीवनमें शुभकी मात्रा अधिक और अशुभकी कम होगी।

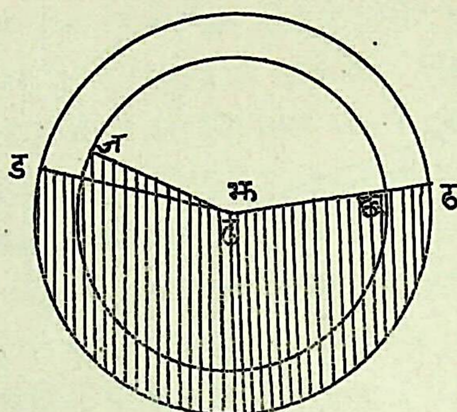
यह नवीन कर्म जो इसी जन्ममें अर्जित किया जाता है, आगामी या 'क्रियमाण' कर्म कहलाता है। इसे ऊपरके चित्र ४० में चित्रित किया गया है। इसका वृत्त पिछले चित्रके वृत्तसे बड़ा है। मान लें कि २९ इकाई के भलेबुरे



चित्र ४०

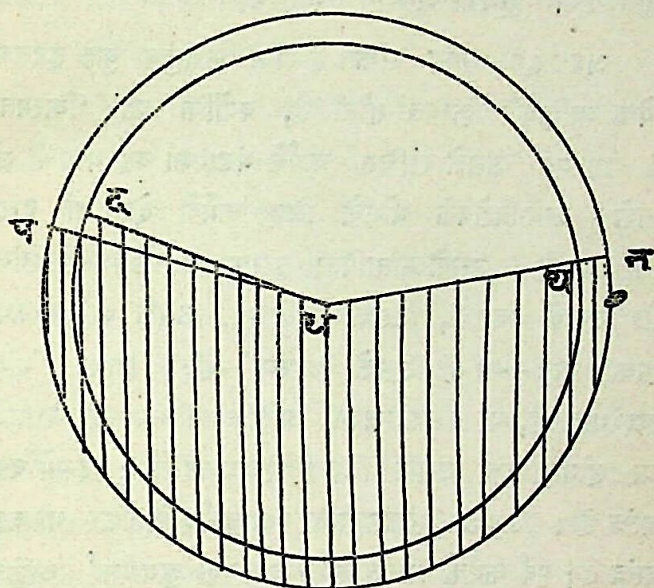
कर्मका भोग हो चुका है और ३६ इकाई के भले-बुरे क्रियमाणकर्मका संग्रह हुआ है। जीवनके आरंभमें भले और बुरे कर्मोंका अनुपात ३:४ का था, जीवनके अंतमें क्रियमाण कर्ममें यह अनुपात १६ भले और २० बुरे कर्मोंका है, अर्थात् ४:५ का। इस चित्रमें ठ त ढ तो भोगे हुए शुभ कर्मका चित्रण करता है और ठ ड ढ नये शुभ क्रियमाण कर्मका।

अगले चित्र ४१ में हम पिछले दोनों चित्रोंको, एकके ऊपर दूसरा चित्र बिठा कर, दिखाते हैं। इस नये चित्रसे स्पष्ट हो जाता है कि पहिलेसे दूसरी बार अधिक शक्ति उत्पन्न की गयी है और शुभकी मात्रा अनुपातमें पहिलेसे अधिक है। यदि हम चित्र ३८ कचखघ को देखें तो पता चलेगा



चित्र ४१

कि वृत्तांश कचगघकसे गित कर्मका भोग हो चुका और अब चित्र ठतडढ अर्थात् पिछले चित्रको उसके स्थानपर जमाना है। यही अगले चित्र ४२ में किया गया है। बाहरी वृत्त नये जोड़ १११ इकाई कर्मका द्योतक है और भीतरी वृत्त १०० इकाई कर्मका। चित्रसे स्पष्ट है कि अब शुभ कर्मकी मात्रा अशुभ कर्मोंके अनुपातमें पहिलेसे अधिक है। अब यह अनुपात लगभग ४१:५९ का है। पहिले अनुपात ४०:६० का था, यह कुछ अधिक वृद्धि नहीं है। एक जन्मके फलस्वरूप केवल १ इकाई शुभ कर्ममें वृद्धि और अशुभ कर्ममें एक इकाईकी कमी हुई है। लेकिन वास्तविकता यह है कि जब तक जीव विकासकी योजनाको समझने नहीं लगता, एक जन्मसे दूसरे जन्ममें बहुत थोड़ी



चित्र ४२

प्रगति होती है; समय बीतता जाता है, सुख और दुःख, सम्पत्ति और विपत्ति आतीजाती है, किंतु अधिक आध्यात्मिक प्रगति नहीं होती। जब जीव भगवानकी विकास-योजनाकी पूर्तिमें सहायक होनेका दृढ़ निश्चय कर लेता है, जब उसका जीवन अपने स्वार्थके लिए न होकर मानवताकी उन्नतिके लिए अर्पित हो जाता है, तब कर्ममें प्रगतिकी गति बढ़ जाती है और उसका विकास शीघ्रतासे होने लगता है। एक जन्मसे दूसरे जन्ममें उन्नति अधिकमात्रामें होने लगती है और शुभ और

अशुभ कर्मोंमें शुभका अनुपात तेज़ीसे बढ़ने लगता है।

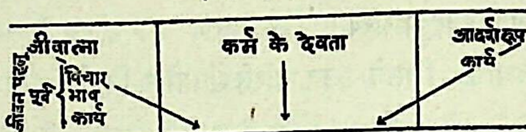
अब हम समझ सकते हैं कि सचमुच कुछ हदतक प्रत्येक व्यक्तिकी 'क़िस्मत' होती है, क्योंकि यह 'किस्मत' या 'प्रारब्ध' उसके संचित कर्मके भंडारका वह भाग है जो उसके जन्म-विशेषके भोगके लिए कर्मके देवताओं द्वारा चुना गया है। उसके मातापिता, उसका वंश, उसके सहायक और उसके विरोधी, उसकी सुविधाएँ, उसके दायित्व तथा उसकी मृत्यु—ये ही उसके 'प्रारब्ध' हैं; इनका भोग अवश्यंभावी है, पर उसकी अपनी प्रतिक्रिया उस भोग-कालमें क्या होगी, यह उसके लिए निश्चित नहीं है; इसमें वह स्वतंत्र है। उसकी संकल्पशक्ति बड़ी दुर्बल है, फिर भी वह स्वतंत्र है; पूर्व कर्मको भोगते समय वह नया शुभ कर्म अर्जित कर सकता है। अपनी परिस्थितियों और पूर्व प्रवृत्तियोंसे वह बहुत कुछ सीमाबद्ध अवश्य है, किंतु उसके भीतर दैवी-शक्तिका निवास है और यदि वह अपनेको जागृत कर ले, तो वह विकासके दैवी-विधानके प्रतिकूल नहीं, वरन् अनुकूल कार्य कर सकता है। उसके गुरुजनों और शिक्षकोंका, तथा शासनका कर्त्तव्य है कि शिक्षाके साधन और बच्चेके चारों ओरका वातावरण इस प्रकारसे प्रस्तुत करें कि जीव विधिविधानसे सहयोग करनेको प्रेरित हो, उसका विरोध करनेको नहीं। परंतु इस प्रकारका आदर्श-संसार अभी भविष्यके गर्भमें ही है।

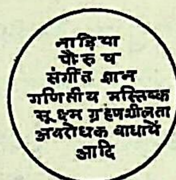
जबतक वह शुभ दिन नहीं आता, प्रत्येक व्यक्तिकी असफलता में —जो अधिकतर परिस्थितियोंके कारण ही होती है—हममेंसे प्रत्येक व्यक्ति जिसने उन परिस्थितियोंके निर्माणमें योग दिया है, उसके कर्ममें भागीदार होता है।

यह कहा जा चुका है कि कर्म-भोगका संचालन कर्मके देवताओंके द्वारा होता है। अब हमें उन सिद्धान्तोंको समझना है जिनके अनुसार ये देवता यह संचालन करते हैं। चित्र ४३ में इन्हें दिखानेकी चेष्टा की गई है। कर्मके देवता जीवके अपने संचित कर्मोंका ही उपयोग कर सकते हैं, उन्हें घटा-बढ़ा नहीं सकते। जीवका अपना इतिहास होता है; अन्य व्यक्तियों, वर्ग-विशेष, तथा राष्ट्र-विशेषसे उसके अपने पूर्वजन्मोंके संबंध होते हैं। जीवको ऐसी जगह जन्म लेने भेजना होता है जहाँ वह अपने कर्मोंका भोग कर सके। पर साथ-साथ यह भी ध्यानमें रखना है कि उसका यह जन्म अनेक जन्मोंकी परम्परामें एक जन्म है और इस परम्पराके अंतमें उसे सिद्ध पुरुषका पद प्राप्त करना है—उसकी यह सिद्धि भगवानके पूर्व-कल्पित चित्रके अनुसार ही होगी। कर्मके देवताओंको उसके कर्म-भोगको इस प्रकार संगठित करना है कि जीव दृढ़ताके साथ उस भगवत्-कल्पित चित्रके अधिकाधिक समीप पहुँचता जाय।

मनुष्यका अधिकतर कार्यकलाप उसकी स्थूल देह पर

कर्म के नियम





चित्र ४३

निर्भर करता है और यह स्थूल देह हमें अपने माता-पितासे मिलती है, इसलिए वंशानुगत प्रकृतिका भी बड़ा महत्व है। आजकल हमलोग इस वंशानुगत स्वभावकी प्राप्तिका कारण माता-पिताके रज-वीर्यमें स्थित दैहिक गुणोंको समझते हैं। अंग्रेजीमें इन्हें 'जेनीज़' (Genes) कहते हैं। कर्मके देवताओंको ऐसी 'जेनीज़' चुनने होते हैं जिनसे कर्मकी आवश्यकताके अनुसार शरीरकी प्राप्ति हो सके। इस संबंधमें मैंने अपने एक पूर्व ग्रंथ 'थिऑसोफी और आधुनिक विचार-धारा' (थिऑसोफी एण्ड मॉडर्न थॉट) में लिखा है :—

"एक बार फिर समस्याका रूप दो जगतोंमें होनेवाली घटनाओंका हो जाता है, एक दृश्य जगत्में और दूसरी अदृश्य जगत्में। दृश्य जगत्में, रूपके संसार

में, मानव शरीर है, जिसका निर्माण वंशानुगत 'जेनीज़' से हुआ है। किसीके लिए ये 'जेनीज़' सहायक सिद्ध होते हैं, किसीके लिए बाधा-स्वरूप। कोई सुगठित स्वस्थ शरीर पाता है और किसीको रक्ताभाव या रतौंधीका रोग-पूर्ण शरीर मिलता है; किसीको संगीतका सुरीला गला मिलता है और किसी दूसरेको पूर्ण बहिरापन और गूँगापन। जिस परिवारमें रंगके पहचाननेकी शक्तिका अधिकतर अभाव रहता है उसी परिवारमें एकाध बचा बिल्कुल साधारण दृष्टिवाला होता है। तीन पर रोगका प्रभाव पड़ता है, एक पर नहीं। ऐसा क्यों होता है?

"हमें रूप-जगत्को छोड़कर जीवके चेतना-जगत्की ओर ध्यान देना होगा, तब जीवके भाग्यकी समस्या समझमें आयेगी। इसमें तीन तत्व काम करते हैं। पहिला तत्व यह है कि मानव एक जीव है, दैवी जगत्का एक अमर प्राणी है। उसका जन्म अतीतके गर्भमें बहुत काल पहिले हुआ था। उसके अनेक जन्म हो चुके हैं और इन जन्मोंमें उसने सोचा-विचारा है, आकांक्षाएँ की हैं और कर्म भी किये हैं और ये विचार, आकांक्षा और कर्म शुभ भी हुए हैं और अशुभ भी। उसने ऐसी शक्तियोंको चालू किया है जो उसके लिए और दूसरोंके लिए भी सहायक अथवा

हानिकर सिद्ध हुई हैं। वह इन शक्तियोंसे बँधा है, सर्वथा स्वतंत्र नहीं है। परंतु वह काल-चक्रमें अनेक जन्म ग्रहण करता है और बराबर अपने आदर्शकी पूर्तिकी ओर बढ़नेका प्रयत्न करता रहता है। यह आदर्श है उसके लिए भगवत्-कल्पित चित्र। जैसे वनस्पति और पशुओंके रूपके तथा आकारके लिए भगवत्-कल्पित चित्र (Archetypes) होते हैं वैसे ही मानवकी आत्माके लिए भी भगवत्-कल्पित चित्र होते हैं। किसीको करुणा-सागर संत होना हैं, किसी और को चरम सत्यका उपदेशक, कोई तीसरा बड़ाभारी शासक बनेगा; वैज्ञानिक और कलाकार, कर्मी और कवि, सभीके लिए भगवान्ने कोई न कोई आदर्श निश्चित कर रखा है जिसकी पूर्ति अपने-अपने स्वभावके अनुसार प्रत्येक जीव कभी न कभी करेगा। अपने आदर्शकी पूर्तिका मार्ग है अपने कर्त्तव्यकी प्राप्ति। इसी शोधके लिए हम जीव जन्म लेते हैं—अपने कर्त्तव्यको पहचाननेके लिए और अपनी छिपी शक्तियोंको प्रकट करनेके लिए। शक्तियोंका यह प्रकटीकरण परिस्थितियोंसे युद्ध करने और अपने कर्त्तव्यकी पूर्ति करनेसे होता है।

"अपना कार्य करनेके लिए हमें हाड़-मांसका शरीर चाहिए और इस शरीरकी उपयोगिता या उसके द्वारा

कार्यमें विघ्न इसी बातपर निर्भर है कि शरीर किस प्रकारके 'जेनीज़' से बना है। इन 'जेनीज़' का संगठन कोई आकस्मिक घटना नहीं है; देवगण मानवके भाग्य-निर्माणमें सहायक होते हैं। ये कर्मके देवता ही उस नियमका संचालन करते हैं जिसके अनुसार जैसा मनुष्य बोता है वैसा ही काटता है। वे ही उन 'जेनीज़' को चुनते हैं जिनसे मनुष्यको अपने अपेक्षित अनुभवको प्राप्त करने और अपने उस शरीरमें कर्मानुसार निर्धारित कार्यको कर सकनेमें पूरी सहायता और सुविधा मिले।

"कर्मके देवता न दंड देते हैं, न पुरस्कार; वे तो संचित कर्मोंमेंसे इस प्रकारका प्रारब्ध निश्चित कर देते हैं जिससे जीव अपने भगवत्-कल्पित चित्रके कुछ अधिक समीप पहुँच सके। जो कुछ सुख अथवा दुःख, अवसर अथवा आपत्ति, आनंद अथवा क्लेश, जीवको किसी जन्म विशेषमें कर्मके देवताओं से प्राप्त होता है, उन सबपर विचार करते हुए ध्यानमें रखने की बात यही है कि जीवका उद्देश्य क्लेश अथवा आनंदकी प्राप्ति नहीं है, वह उद्देश्य तो है अपने भगवत्-कल्पित चित्रके अनुकूल बनना। आगे चलकर भविष्यमें उसे कर्मका असीम आनंद प्राप्त होगा क्योंकि तब वह अपने ईश्वर-दत्त आदर्शके अनुकूल बन चुका होगा, किंतु अभी तो उसे

अनुभवके मार्गपर ही अग्रसर होना है ।

"माता-पिताके रजवीर्यके संयोगसे जब गर्भाणु बन चुकता है, तब कर्मके देवता उसके लिए 'जेनीज़'का चुनाव करते हैं, क्योंकि जीव स्वयं अभी यह कार्य कर नहीं सकता। यदि विकासके लिए उसे कोई विशेष कौशल प्राप्त करना है—मान लें कि उसे संगीतज्ञ होना है—तो उसी प्रकारके 'जेनीज़' उसके लिए चुने जायँगे। गायकको अत्यंत ग्रहणशील स्नायुसंस्थानकी आवश्यकता होगी और उसके कान भी विशेष रूपसे ग्रहणशील होने चाहिए और जैसे-जैसे भ्रूण बढ़ता जाय उसके लिए उपयुक्त 'जेनीज़' का संग्रह होता जायगा। यदि साथही मनुष्यकी अंतः-शक्तिको किसी विघ्नबाधाके द्वारा जागृत करना है, या उसके स्वभावका परिष्कार कष्टके ताप द्वारा करना है तब उसके लिए ऐसे विघ्नकारी और व्याधि उत्पन्न करनेवाले 'जेनीज़' भी ला दिये जायँगे। यदि जीवको गणितका विशेष प्रतिभाशाली विद्वान होना है, तो उन 'जेनीज़' का गर्भाणुके भ्रूण बननेके साथ-साथ विशेष विकास होगा जिनसे गणितज्ञ मस्तिष्कका निर्माण हो।

"जो कुछ कर्म जीवको करना है उसीके अनुकूल 'जेनीज' का चुनाव ये देवगण उसके लिए करते हैं;

नये देशमें वस्ती वसानेवालेके लिये पौरुष, सूक्ष्मदृष्टि प्राप्त करनेवालेके लिए उपयुक्त मनोरचना, कष्टके द्वाराही उन्नत होनेवालेके लिये कुछ विघ्न-बाधाएँ—इन सबका वितरण कर्मके देवता करते हैं। असीम करुणा और ज्ञानके साथ परन्तु न्याय-पथसे रोम-मात्र भी विचलित हुए बिना, ये देवता एक जीवके लिए प्रतिभाशालीके योग्य शरीर का निर्माण करते हैं और मूर्खके लिए उसके योग्य शरीर। उनका लक्ष्य तो जीवको सुखी या दुःखी करने का नहीं है, वे तो उसे उसके भगवत्-कल्पित चित्रके अधिकाधिक सदृश बनाना चाहते हैं। अवसर और विपत्ति, कौशल और कठिनाई, सुख और दुःख, ये सब तो जीवके रहनेके लिए बननेवाले घरके ईंट-रोड़े हैं। अपनी ओरसे कर्मके देवता न कुछ देते हैं, न छीनते हैं; वे तो उन पूर्व-अर्जित कर्मोंका संतुलन इस प्रकार करते हैं कि जीव शीघ्रातिशीघ्र अपने भगवत्-निश्चित आदर्शके अनुकूल बन जाय। यही जीवके जन्म-मरणका उद्देश्य है।"

किंतु हमको यह न समझ लेना चाहिए कि यह 'प्रारब्ध' बिल्कुल कठोर पत्थर परकी लकीर है जिसमें मनुष्य कुछ फेर-फार कर ही नहीं सकता। जीव अपने 'भाग्य'को बदल सकता है और कभी-कभी बदल डालता भी है, यदि पूर्व कर्मों के फलके प्रति उसकी उपयुक्त प्रतिक्रिया हो। उदाहरणके

लिए आत्महत्या किसीके प्रारब्धमें अनिवार्य घटना नहीं है, यद्यपि किसी-किसी की परिस्थिति हमको उसकी सहन शक्तिके बाहर मालूम पड़ें। प्रत्येक जीवके लिए योजना तो यही है कि जीव अपने कष्ट, शोक और चिंताओंसे सफलताके साथ युद्ध करे, उनसे परास्त न हों। उसी तरह एक जीव ऐसे अवसर-से लाभ उठा सकता है जिसकी योजना खास उसके लिए नहीं की गयी है। कोई धर्माचार्य, जिनके प्रकट होनेका उस जीवसे विशेष संबंध नहीं है, उसे बहुत प्रभावित करें और उससे जीव अपने जीवनमें विशेष परिवर्तन कर डाले। कभी-कभी दूसरोंके प्रभावसे भी किसी जीवके कर्मभोगमें कुछ व्यतिक्रम उत्पन्न हो सकता है, जिस व्यतिक्रमकी कोई योजना उसके लिए नहीं थी। ऐसी सब अवस्थाओंमें, चाहे वे घटनाएँ जीवके लाभकी जान पड़ें या हानिकी, संचित कर्मके भंडारमेंसे इस कर्मभोगकी कटौती कर दी जाती है और अंतमें किसीके साथ किसी प्रकारका अन्याय नहीं होने पाता। सभी अपनेही कर्मफलका भोग करते हैं।

बड़ी रोचक बात यह है कि कर्म कई प्रकारके होते हैं और व्यक्तियोंका पारस्परिक संबंध उनमेंसे एक या अधिक प्रकारके कर्म द्वारा हो सकता है किंतु यह आवश्यक नहीं है कि सभी प्रकारके कर्मों द्वारा किन्ही दो व्यक्तियोंका संबंध हो। सबसे अधिक प्रचलित संबंध पूर्व जन्मके प्रेम अथवा

घृणाका होता है, पर साथही जाति और वंशके भी संबंध होते हैं। जैसे ब्राह्मण जातिमें उत्पन्न व्यक्ति उस जातिके शुभ और अशुभ कर्मोंका अधिकारी होता है। किसी राष्ट्र-विशेषमें उत्पन्न हुआ व्यक्ति उस राष्ट्रके शक्तियोंके अर्जित शुभ तथा अशुभ कर्मोंके हितकारक या अनिष्टकारक फलोंका भागी होता है। कार्य विशेषका भी कर्म-फल विशेष प्रकारका होता है; किसी महान् सेनापतिका सहायक अधिकारी अगले जन्मोंमें जहाँ कहीं वह सेनापति जन्म लेगा उसके साथ जन्म लेकर उसके स्वप्नों, योजनाओं और सैनिक आक्रमणोंमें योग देगा। ऐसी अवस्थामें नेता और अनुयायीमें प्रेम अथवा श्रद्धा तथा स्नेहके संबंध हो भी सकते हैं और न भी हों; उनको एक दूसरेसे बाँधनेवाला सूत्रतो उनका कार्य-विशेष है, जिसमें वे एक दूसरेकी सहायता करते या कार्यमें बाधा डालते हैं।

इस संक्षिप्त वर्णनमें कर्मकी गहन गति तथा जीवके कार्य-कलापका पूरा विवरण नहीं दिया जा सकता। कर्मके रहस्यको पूर्णतया समझनेके लिए तो सिद्ध पुरुषके पूर्ण ज्ञानकी आवश्यकता है, परंतु साधारण तौरसे भी कर्मके सिद्धान्तको समझ लेनेसे जीवनकी संभावनाओंके संबंधमें हमारी कल्पनामें बड़ी व्यापक क्रान्ति हो जाती है। थिऑसोफी या ब्रह्मविद्याकी दृष्टि सर्वथा आचार मूलक है, इसलिए कर्मके रहस्यका संक्षिप्त विवरण चित्र ४४ द्वारा बड़ी सरलता से स्पष्ट किया जा सकता है।

कर्म—नियम

कर्म = क्रिया

पूर्व जन्मका कर्म		वर्तमान जन्मका कर्म
उपयोगी कार्योंसे	मिलती है	अच्छी परिस्थिति
हानिकारक कार्योंसे	मिलती है	दुःखद परिस्थिति
इच्छाओं तथा आकांक्षाओंसे	बनती है	शक्तियाँ
सतत विचारोंसे	बनता है	शील
यशसे	मिलता है	उत्साह
अनुभवोंसे	मिलता है	ज्ञान
दुःखद अनुभवोंसे	मिलता है	सद् असद् विवेक
सेवाके निश्चयसे	मिलती है	आध्यात्मिकता
मनुष्य जैसे बोता है वैसे ही काटता है।		

चित्र ४४

'प्रियतम ! यदि हम और तुम भगवान्के साथ मिलकर इस जगतकी संपूर्ण योजनाको समझ पाते, तो क्या अपने हिस्सेकी योजनाको टुकड़े-टुकडे करके अपनी हृदयकी आकांक्षाके अनुकूल उसे फिरसे न गढ लेते !'

सचमुच भगवान्ने इस संपूर्ण योजनाका निर्माण किया है, और यह निमार्ण प्रेम और सौंदर्यके अनुकूल किया गया है परंतु मानव विकासकी वर्तमान अवस्थामें, उस प्रेमपूर्ण और सौंदर्यमयी योजनाका वास्तविक निवास हमारी पृथ्वीपर

न हो कर 'स्वर्ग' में है। इस योजनाका नियंता उस दिनकी राह देख रहा है जब उसके शुभ-संकल्पकी पूर्ति स्वर्ग और पृथ्वी दोनोंही पर, होने लगेगी; किंतु वह दिन तब तक न आयेगा जब तक उसके अंश-स्वरूप अगणित जीवात्माओंमेंसे प्रत्येक उसके साथ मिलकर वर्तमान साँचेको टुकड़े-टुकड़े करके उसके हृदयके संकल्पके अनुकूल इस समस्त योजनाको नये रूपसे गढ़नेमें उसका हाथ न बँटायेगा। वह विश्वकर्मा बनाकर बिगाड़ता रहता है और पुनः अपनी कल्पना और इच्छाके अनुसार उसे गढ़ता और सुधारता रहता है। समस्त जगत उसका कृत्य है, उसका कर्म है। हमें उसीका अनुसरण करना है, हमारे हृदयके अंदर उठने वाली उसकी वंशी-ध्वनि हमें सुननी है और उसके अनुसार अपनी योजनाओंको टुकड़े-टुकड़े करके फिर हृदयकी वंशी-ध्वनिके अनुकूल उनका नवनिर्माण करना है। जब हममेंसे प्रत्येक हृदयकी वास्तविक इच्छाके दर्शन कर लेगा और जब सचमुच उसे पूर्णरूपसे तोड़ फोड़ कर फिरसे मानवमात्रके हितके लिए—अपने स्वार्थके लिए नहीं, एक नवीन दैवी योजना का भान कर लेगा, तो अनिवार्य रूपसे उसे अपने प्रत्येक कार्यको इस प्रकार करना और गढ़ना होगा कि उसका प्रत्येक कर्म ब्रह्मकर्म होगा और उसके द्वारा भगवत् संकल्पकी उसीकी इच्छाके अनुसार पूर्ति होगी।

श्री सी. जिनराजदास एम०ए० थिओसॉफिकल सोसायटी के चौथे अध्यक्ष एक सुप्रसिद्ध विद्वान और थिऑसोफी के उपदेष्टा थे। 'फर्स्ट प्रिंसिपल्स ऑफ थिऑसोफी' उनकी सर्वश्रेष्ठ पुस्तक समझी जाती है। इस पुस्तक का संसार की नौ भाषाओं में अनुवाद हो चुका है और अंग्रेजी ग्रन्थ के दस संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। हिन्दी पहिली भारतीय भाषा है, जिसमें उसका प्रकाशन हो रहा है।

प्रथम भाग में रूप और जीवन का विकास, सभ्यताओं का उत्थान और पतन, पुनर्जन्म के नियम और कर्म के नियम ये चार अध्याय हैं। दूसरे भाग में अदृश्य जगत, जन्म और मृत्यु में मानव पशुओं का विकास, त्रिमूर्ति का कार्य और जीवन की कोटियाँ, ये पाँच अध्याय हैं। तीसरे भाग में पदार्थ और शक्ति का विकास, जीवन का विकास, प्रकृति का सौन्दर्य-संदेश, चेतना का विकास, संसार का आभ्यंतरिक शासन, साधन पथ, भगवान की योजना अथवा विकास और उपसंहार, ये शेष अध्याय हैं।

मूल्य — २–५० प्रतिभाग